रसज्ञ-रंजन

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

साहित्यरत्न भंडार
आगरा

रसज्ञ-रञ्जन

लेखक—
आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक—

महेन्द्र, सञ्चालक

साहित्य-रत्न-भण्डार,

साहित्य-कुञ्ज, आगरा।

विषय-सूची

पहले संस्करण की

भूमिका

इस संग्रह में नौ लेख हैं। दो लेखों का विषय एक ही होने से उन दोनों का समावेश एक ही—अर्थात् पहिले ही—लेख में कर दिया गया है। इनमें से पहिले पाँच लेखों में जिन बातों का वर्णन है, उनका सम्बन्ध कविता और कवि-कर्त्तव्य से है। इस समय, हिन्दी-भाषा के सौभाग्य से, अनेक नये-नये कवि-कविता करने लगे हैं। अतएव, आशा है, ये लेख औरों के लिए नहीं, तो विशेषतः कवियों और कविता-प्रेमियों के लिए अवश्य ही थोड़े-बहुत मनोरञ्जन का कारण होंगे। सातवें लेख में, थोड़ी-सी वैज्ञानिक अथवा ऐतिहासिक खोज होने पर भी, कवियों की हंस-सम्बन्धी समय-सिद्ध बातों पर विचार प्रकट किये गये हैं। रहे, अवशिष्ट तीन लेख। सो उनमें से एक में एक नवीन और दो में दो प्राचीन कवियों की रसवती कविता के बड़े ही हृदय-हारी नमूने हैं। इस तरह, इस छोटी-सी पुस्तक में, हिन्दी के कवियों और अन्य सरस-हृदय सज्जनों के मनोविनोद को कुछ सामग्री प्रस्तुत की गई है।

इसमें से लेख नम्बर १ [२] के लेखक श्रीयुत विद्यानाथ और नम्बर ८ के श्रीयुत भुजङ्गभूषण भट्टाचार्य्य हैं। इन पिछले महाशय ने अपना लेख लिखने में डाक्टर सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के एक बँगला-लेख से कुछ सहायता ली है। नम्बर ७ लेख लिखने में उनके लेखक ने भी बाबू रामदास सेन के एक बँगला-निबन्ध के कुछ भाव ग्रहण किये हैं। इसलिए ये दोनों लेखक बँगला-भाषा के इन विद्वानों के कृतज्ञ हैं।

दौलतपुर, रायबरेली
२१ अगस्त, १९२० } महावीरप्रसाद द्विवेदी

दूसरे संस्करण के सम्बन्ध में

निवेदन

इस पुस्तक का पहला संस्करण निकले पूरे १२ वर्ष से भी अधिक समय हो गया। उसे जबलपुर के राष्ट्रीय-हिन्दी-मन्दिर ने प्रकाशित किया था। उसके अस्तित्व या अनस्तित्व का पता मुझे कई वर्षों से कुछ भी नहीं। अतएव इस पुस्तक के प्रकाशन और प्रचार का काम, विवश होकर, मुझे अब आगरे के साहित्य-रत्न-भण्डार को सौंपना पड़ा है।

दौलतपुर, रायबरेली
१ जून १९३३

म० प्र० द्विवेदी

पंडित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी

जीवन-परिचय

जीवनी—पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी का जन्म रायबरेली के अन्तर्गत दौलतपुर नामक ग्राम में सं० १६२१ वैशाख शुक्ल ४ को हुआ था। निर्धनता एवं ग्राम्य-जीवन के जिस वातावरण में आपकी प्रारम्भिक शिक्षा आरम्भ हुई, वह सर्वथा निराशाजनक थी। गाँव के मदरसे में उर्दू-हिन्दी पढ़ते समय ही घर पर अपने पितृव्य पण्डित दुर्गाप्रसादजी के प्रबन्ध से इन्होंने थोड़ा सा संस्कृत-व्याकरण पढ़ा एवं शीघ्रबोध तथा मुहूर्तचिन्तामणि आदि पुस्तकें भी कण्ठ कीं। ग्राम्य पाठशाला की पढ़ाई समाप्त करने के बाद इन्होंने नित्य प्रति १५ कोस रायबरेली जाकर, फीस आदि की कठिनाइयों के बीच अंगरेजी शिक्षा प्राप्त की। इसे पढ़ कर हठात् नेत्रों के समक्ष स्वनामधन्य पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का विद्यार्थी जीवन याद आ जाता है। अस्तु, कठिनाइयों की अधिकता के कारण वह स्कूल छोड़ कर आपको उन्नाव के पुरवा के कस्बे के एँग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल में आना पड़ा। दुर्भाग्यवश वह स्कूल कुछ ही समय में टूट गया और द्विवेदीजी को वहाँ से जाना पड़ा।

क्रमशः फतेहपुर और उन्नाव में शिक्षा प्राप्त करके ये अपने पिता पं० रामसहायजी के पास बम्बई चले गये। यहाँ आपने मराठी, गुजराती, संस्कृत एवं अंगरेजी का अच्छा अध्ययन किया। विद्याध्ययन के साथ ही साथ आप तार का काम भी

सीखते थे। कुछ ही समय में इन्हें जी० आई० पी० रेलवे में सिगनेलर की जगह मिल गयी और क्रम-क्रम से उन्नति करते-करते आप झाँसी में डिस्ट्रिक्ट ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेण्ट के हेड-क्लर्क हो गये। वहाँ बंगालियों के सहवास ने इन्हें बंगला भाषा के अभ्यास में सहायता पहुँचायी। इसी समय आपने संस्कृत के काव्य-ग्रन्थों तथा अलंकार ग्रन्थों का विशेष रूप से मनन किया। धीरे-धीरे आपका विचार साहित्य-सेवा की ओर आकृष्ट हुआ। इसी समय एक घटना ऐसी हो गयी, जिससे यह विचार कार्य रूप में परिणत हो गया। पुराने डी० टी० एस० के स्थान पर जो साहब आये थे उनसे इनकी कुछ कहा-सुनी हो गयी जिसके परिणाम-स्वरूप इन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया और स्वतंत्र होकर हिन्दी की सेवा में जुट गये। तब से बराबर द्विवेदीजी मातृ भाषा का उपकार ही करते रहे।

परिस्थितियाँ—द्विवेदीजी के साहित्य-क्षेत्र में आने के समय हिन्दी की दशा बहुत ही अस्थिर थी। कविता के क्षेत्र में जो नई जान भारतेन्दुजी ने डाली थी उससे यद्यपि बहुत उपकार हुआ था और कविता धीरे-धीरे जीवन के समीप आती जाती थी किन्तु उसकी भाषा ब्रजभाषा ही थी, जिससे आगे चल कर बड़ी विषम स्थिति उत्पन्न होगयी। गद्य की भाषा खड़ी और कविता की भाषा ब्रजभाषा होने से 'खड़ी बोली बनाम ब्रजभाषा' का द्वन्द्व सामने आया और हिन्दी के कवि दो समाजों में बँट गये, जो एक दूसरे का प्रबल विरोध करते थे। द्विवेदीजी के समय में यही द्वंद्व प्रबल रूप धारण किये हुए था। गद्य की दशा और भी बुरी थी। भारतेन्दु के समय से गद्य की प्रणाली निश्चित रूप से विकसित होने लगी थी। गद्य के प्रत्येक क्षेत्र—निबन्ध, उपन्यास-नाटक आदि—की ओर ध्यान दिया जा रहा था; बंगला तथा अंगरेजी आदि के ग्रंथों के अनुवाद से भाषा का भण्डार भरा जा रहा था,

पर अनुवादकर्त्ता तथा भारतेन्दु के अनन्तर आने वाले अधिकांश साहित्य-कवियों का हिन्दी से अधिक परिचय न होने से, भाषा में शिथिलता, व्याकरण-दोष तथा अंग्रेजी और बंगलापन की बू आने लगी। परिणामस्वरूप हिन्दी का रूप ही बिगड़ जाने की आशंका होने लगी। प्रवाह की तीव्रता के कारण सारे बंधन टूट गये। ऐसी स्थिति में द्विवेदीजी हिन्दी-क्षेत्र में आये और अपनी प्रतिभा के बल पर उन्होंने पद्य तथा गद्य दोनों पर अपना शुभ प्रवाह डाला।

कविता—जैसा पहले कहा गया है, द्विवेदीजी के समय में ब्रज और खड़ी बोली का प्रश्न तीव्र रूप में था। यद्यपि पं० श्रीधर पाठक और पं० नाथूरामजी शर्मा 'शंकर' ने खड़ी बोली का अपनाकर उसे माँजने का प्रयत्न किया, पर इस ओर सब से अधिक प्रभाव द्विवेदी का ही पड़ा। 'सरस्वती' में तो अपनी कविताएँ आप छापते ही थे पर साथ ही 'कविता-कलाप', 'काव्य मंजूषा' तथा 'सुमन' आदि कविता संग्रह एवं 'कुमारसंभवसार' आदि अन्य ग्रंथ भी आपने प्रकाशित कराये। यद्यपि जैसा द्विवेदी जी ने 'रसज्ञ-रञ्जन' में कहा है, वे अपने को कवि नहीं मानते थे, पर इसमें किसी को सन्देह नहीं कि खड़ी बोली का रंग गाढ़ा करके तथा कविता में सामयिकता तथा उपयोगिता का समावेश करके आपने कविता को एक नए और निश्चित मार्ग पर डाला जिससे प्रभावित होकर खड़ी बोली के अनेकानेक कविवर मैदान में आये। बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पं० रामचरित उपाध्याय, पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय तो इनके उत्साहित शिष्यों में हैं ही, पर साथ ही 'सनेही', ठाकुर गोपालशरणसिंह, बाबू सियारामशरण गुप्त, पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी आदि पर भी द्विवेदीजी का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव विद्यमान है। स्वयं एक बड़े कवि न होते हुए भी आप एक बहुत बड़े कवि-निर्माता अवश्य थे।

गद्य—कविता से अधिक द्विवेदीजी का प्रभाव हिन्दी गद्य के ऊपर पड़ा है। इस क्षेत्र में सबसे बड़ा काम गद्य के स्वरूप की रक्षा करना था। जो व्याकरण दोष, लचरपन तथा विदेशी वाक्यविन्यास की बू गद्य में स्थान पा रही थी उसका नियन्त्रण करना आपका प्रथम कार्य था। 'इच्छा किया' आदि प्रयोगों को लेकर आपने 'सरस्वती' में जो तीव्र आलोचना की उससे लेखकों के होश ठिकाने आने लगे; इस तीव्र कशाघात से लोगों की आँखे खुलीं और उन्हें ज्ञान हुआ कि हिन्दी भी एक ऐसी भाषा है जिसमें व्याकरण के नियम हैं, वाक्य-विन्यास की शैली है और शब्दों का साधु प्रयोग है। क्रमशः हिन्दी-गद्य एक निश्चित तथा शुद्ध शैली पर आ गया। पं० रामचन्द्रजी शुक्ल का मत है कि द्विवेदीजी का यह कार्य, जब तक भाषा के लिए व्याकरण-विशुद्धता आवश्यक समझी जाती है—सदा साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा।

गद्य के स्वरूप-निर्धारण के अतिरिक्त द्विवेदीजी ने उसके विविध अङ्गों की पूर्ति का भी उद्योग किया। सामयिक विषयों पर लिखे हुए निबन्धों के अतिरिक्त आपने 'बेकन विचार रत्नावली' नामक निबन्धों का संग्रह तथा 'स्वाधीनता', 'शिक्षा' 'सम्पत्ति शास्त्र' आदि कई अन्य ग्रन्थ बेकन, मिल, स्पेंसर आदि विद्वानों के ग्रन्थों के अनुवाद-स्वरूप प्रस्तुत किये। समालोचना के क्षेत्र में भी आपने कई पुस्तक तथा लेख प्रकाशित किये। उनके कविता सम्बन्धी कई निबन्ध 'रसज्ञ-रञ्जन' में विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त 'हिन्दी कालिदास की समालोचना' 'कालिदास की निरंकुशता', 'नैषधचरित चर्चा' आदि कई अन्य ग्रन्थ इसी विषय पर और हैं।

इस प्रकार हिन्दी पर द्विवेदीजी का प्रभाव सर्वतोमुखी तथ चिरकाल तक रहने वाला है।

द्विवेदीजी की शैली—लेखक को कैसी भाषा प्रयुक्त करनी चाहिए इसके ऊपर द्विवेदीजी ने 'हिन्दी कालिदास की आलोचना' तथा 'रसज्ञ-रञ्जन' में अपने भाव प्रकट किये हैं। रसज्ञ-रञ्जन में उन्होंने कहा है कि "ऐसी भाषा लिखनी चाहिए, जिसे सब सहज में समझ लें.................यदि इस उद्देश्य ही की सफलता न हुई हो तो लिखना ही व्यर्थ हुआ।" एक अन्य स्थल पर कहा है कि "बेमुहाविरा भाषा अच्छी नहीं लगती। 'क्रोध क्षमा कीजिये' इत्यादि वाक्य कान को अतिशय पीड़ा पहुँचाते हैं।" इन बातों से द्विवेदीजी की भाषा तथा शैली का अनुमान किया जा सकता है। उन्होंने घोर तत्समता का प्रयोग नहीं किया। 'शुद्धतर' और 'शुद्धतम' की अपेक्षा वे 'अधिक' का प्रयोग अच्छा समझते हैं। उर्दू तथा फारसी के प्रचलित शब्द द्विवेदीजी द्वारा बराबर प्रयुक्त हुए हैं। सब कुछ होते हुए भी यह ध्यान रखना चाहिये कि अपने ही सिद्धान्तों का अक्षरशः पालन करना कठिन हो जाता है और द्विवेदीजी भी इस नियम के अपवाद नहीं हैं। यही कारण है कि बीच-बीच में आपका संस्कृत का पाण्डित्य अपना चमत्कार दिखा ही जाता है और 'सारस्य' 'कौटिल्य' 'पुरपायित सम्बन्ध' आदि शब्द स्थान-स्थान पर आते हैं। उग्र समालोचक के नाते समझिये अथवा और किसी भी कारण से हो—द्विवेदीजी की शैली में प्रवाह की कमी है। एक ही भाव को बार-बार दुहराने की प्रवृत्ति भी आपकी शैली की विशेषता है, 'रसज्ञ-रञ्जन' में भी इन प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है।

'रसज्ञ-रञ्जन' आपके साहित्यिक निबन्धों का सर्वोत्तम संग्रह है। इसमें वर्णित 'उर्म्मिला विषयक कवियों की उदासीनता' पढ़ कर ही शायद कविवर मैथिलीशरणजी को 'साकेत' की सृष्टि करनी पड़ी थी। 'हंस का नीर-क्षीर-विवेक' शीर्षक लेख भी

अपने ढङ्ग का एक ही है। 'नल का दुस्तर दूत कार्य' और 'हंस-सन्देश' में एक ओर जहाँ अलङ्कारिक वर्णन की विशेषता है, वहाँ दूसरी ओर भावों की ऊहापोह और उच्चकोटि के शृङ्गार रस का समुचित स्वाद मिलता है। कवि और कविता के विषय में आपने जो कुछ लिखा है, वह यद्यपि बीस वर्ष पुराना लिखा हुआ है; परन्तु आज भी उसकी अधिकांश बातें सत्य और नये कवियों के लिये माननीय हैं।

—महेन्द्र

———

रसज्ञ-रञ्जन

१—कवि-कर्त्तव्य ।

[१]

कवि-कर्त्तव्य से हमारा अभिप्राय हिन्दी के कवियों के कर्त्तव्य से है । समय और समाज की रुचि के अनुसार सब बातों का विचार करके हम यह लिखना चाहते हैं कि कवि का कर्त्तव्य क्या है । अपने मनोगत विचारों को हमें थोड़े ही में लिखना है ।

अतः इस लेख को हम चार ही भागों में विभक्त करेंगे; अर्थात—छन्द, भाषा, अर्थ और विषय । इन्हीं की, यथाक्रम हम समीक्षा आरम्भ करते हैं ।

छन्द

गद्य और पद्य दोनों ही में कविता हो सकती है, यह समझना अज्ञानता की पराकाष्ठा है कि जो कुछ छन्दोबद्ध है सभी काव्य है । कविता का लक्षण जहाँ कहीं पाया जाय, चाहे वह गद्य में हो चाहे पद्य में, वही काव्य है । लक्षण-हीन होने से कोई भी छन्दोबद्ध लेख काव्य नहीं कहलाये जा सकते और

लक्षण-युक्त होने से सभी गद्य-बन्ध काव्य-कक्षा मे सन्निविष्ट किये जा सकते हैं। गद्य के विषय मे कोई विशेष निर्दिष्ट करने की उतनी आवश्यकता नही जितनी पद्य के विषय मे है। इसलिये हम, यहाँ पर, पद्य ही का विचार करेंगे। भाषा, अर्थ और विषय के सम्बन्ध मे जो कुछ हम कहेंगे वह गद्य के सम्बन्ध में भी, प्राय समान-भाव से प्रयुक्त हो सकेगा।

जिन पंक्तियों मे वर्णों या मात्राओं की संख्या नियमित होती है, वे छन्द कहाती हैं; और छन्द मे जो कुछ कहा जाता है, वह पद्य कहलाता है। कोई-कोई छन्द और पद्य दोनों को एक ही अर्थ का वाचक मानते हैं।

जो सिद्ध कवि हैं वे चाहे जिस छन्द का प्रयोग करें उनका पद्य अच्छा ही होता है, परन्तु सामान्य कवियों को विषय के अनुकूल छन्द-योजना करनी चाहिये। जैसे समय विशेष में राग विशेष के गाये जाने से चित्त अधिक चमत्कृत होता है, वैसे ही वर्णन के अनुकूल वृत्त-प्रयोग करने से कविता का आस्वादन करने वालों को अधिक आनन्द मिलता है। गले में डाली हुई मेखला के समान वृत्त-रूपिणी हार-लता को अनुचित स्थान में विनिवेशित करने से कवि की अज्ञानता दर्शित होती है। इस लेख मे हम इस बात का विवेचन नही करना चाहते कि किस विषय के लिये कौन-सा छन्द प्रयोग मे लाना चाहिए। काव्य के मर्मज्ञ निपुण कवि स्वयंमेव जान सकते हैं कि कौन छन्द कहाँ विशेष शोभा-वर्धक होगा। प्राचीन संस्कृत कवि इसका पूरा-पूरा विचार रखते थे। उन्होंने ऋतुओं का वर्णन प्रायः उपजाति-छन्द मे किया है, नीति का वंशस्थ में किया है, चन्द्रोदयादि का रथोद्धता मे किया है, वर्षा और प्रवास का मन्दाक्रान्ता में किया है, और स्तुति, शौर्य आदि का शार्दूल-विक्रीडित और शिखरिणी में किया है। यही नहीं; किन्तु

वृत्त-रचना में छन्द-शास्त्र के नियमों के अतिरिक्त वे लोग और और विषयों का भी ध्यान रखते थे। दोधक-वृत्त का लक्षण तीन भगण और दो गुरु हैं। इस नियम का प्रतिपालन करते हुए वे तीन ही तीन अक्षर वाले शब्द-प्रयोग करते थे, जिस से छन्द की शोभा विशेष बढ़ जाती थी। तोटक में वे रूखे अक्षर वाले ही शब्द रखते थे; क्योंकि ऐसे अक्षर वाले शब्दों से सङ्गठित हुआ तोटक, ताल की द्रुतगति के समान, मन को सविशेष आनन्दित करता है। हिन्दी के कवियों को भी इन बातों का विचार करना चाहिए।

दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका। कवियों को चाहिए कि यदि वे लिख सकते हैं, तो इनके अतिरिक्त और और छन्द भी लिखा करें। हम यह नहीं कहते कि ये छन्द नितान्त परित्यक्त ही कर दिये जायँ। हमारा अभिप्राय यह है कि इनके साथ-साथ संस्कृत काव्यों में प्रयोग किए गये वृत्तों में से दो चार उत्तमोत्तम वृत्तों का भी प्रचार हिन्दी में किया जाय। इन वृत्तों में से द्रुतविलम्बित, वंशस्थ और वसन्ततिलका आदि वृत्त ऐसे हैं जिनका प्रचार हिन्दी में होने से हिन्दी काव्य की विशेष शोभा बढ़ेगी। किसी-किसी ने इन वृत्तों का प्रयोग भी आरम्भ कर दिया है। यह सूचना उन्हीं लोगों के लिए है जो सब प्रकार के छन्द लिखने में समर्थ हैं, जो घनाक्षरी और दोहे अथवा चौपाई की सीमा उल्लंघन करने में असमर्थ हैं, उनके लिए नहीं।

आजकल की बोलचाल की हिन्दी की कविता उर्दू के विशेष प्रकार के छन्दों में अधिक खुलती है, अतः ऐसी कविता लिखने में तदनुकूल छन्द प्रयुक्त होने चाहिए।

कुछ-कुछ कवियों को एक ही प्रकार का छन्द सध जाता है;

इसे ही वे अच्छा लिख सकते हैं। इनको दूसरे प्रकार का छन्द लिखने का प्रयत्न भी नहीं करना चाहिए। यदि कविता सरस और मनोहारिणी है, तो चाहे वह एक ही अथवा बुरे से बुरे छन्द मे क्यों न हो उसमें आनन्द अवश्य ही मिलता है। तुलसीदास ने चौपाई और बिहारीलाल ने दोहा लिख कर ही इतनी कीर्ति सम्पादन की है। प्राचीन कवियों को भी किसी-किसी वृत्त मे समधिक स्नेह था; वे अपने आदृत वृत्त ही को अधिक काम मे लाते थे और उसमे उनकी कविता खुलती भी अधिक थी। भारवि का वंशस्थ, रत्नाकर की वसन्ततिलका, भवभूति और जगन्नाथराय की शिखरिणी, कालिदास की मन्दाक्रान्ता और राजशेखर का शार्दूल-विक्रीड़ित इस विषय मे प्रमाण है।

पादान्त में अनुप्रास-हीन छन्द भी हिन्दी में लिखे जाने चाहिए। इस प्रकार के छन्द जब संस्कृत, अंग्रेजी और बङ्गला मे विद्यमान हैं तब, कोई कारण नहीं कि हमारी भाषा मे वे न लिखे जाँय। संस्कृत ही हिन्दी की माता है। संस्कृत का सारा कविता-साहित्य इस तुकबन्दी के बखेड़े से बहिर्गत-सा है। अतएव इस विषय मे यदि हम संस्कृत का अनुकरण करें, तो सफलता की पूरी-पूरी आशा है। अनुप्रास-युक्त पादान्त सुनते सुनते हमारे कान इस प्रकार की पंक्तियों के पक्षपाती हो गये हैं। इसलिए अनुप्रास-हीन रचना अच्छी नहीं लगती। बिना तुक वाली कविता के लिखने अथवा सुनने का अभ्यास होते ही वह भी अच्छी लगने लगेगी, इसमें कोई संदेह नही। अनुप्रास और यमक आदि शब्दाडम्बर कविता के आधार नहीं, जो उनके न होने से कविता निर्जीव हो जाय, या उससे कोई अपरिमेय हानि पहुँचे। कविता का अच्छा और बुरा होना विशेषतः अच्छे अर्थ और रस-बाहुल्य पर अवलम्बित है। परन्तु अनुप्रासों के ढूँढने का प्रयास उठाने मे समुचित शब्द न मिलने से अर्थांश की हानि हो जाया करती है,

इससे कविता की चारुता नष्ट हो जाती है। अनुप्रासों का विचार न करने से कविता लिखने में सुगमता भी होती है और मनोऽभिलाषित अर्थ व्यक्त करने में विशेष कठिनाई भी नहीं पड़ती। अतएव पादान्त में अनुप्रास-हीन छन्द हिन्दी में लिखे जाने की बड़ी आवश्यकता है। संस्कृत में प्रयोग किये गये शिखरिणी, वंशस्थ और वसन्ततिलका आदि वृत्त ऐसे हैं, जिनमें अनुप्रास का न होना काव्य-रसिकों को बहुत ही कम खटकेगा। पहले-पहल इन्हीं वृत्तों का प्रयोग होना चाहिए।

किसी भी प्रचलित परिपाटी का क्रम-भङ्ग होता देख प्राचीनता के पक्षपाती बिगड़ खड़े होते हैं और नई चाल के विषय में नाना प्रकार की कुचेष्टाएँ और दोषोद्भावनाएँ करने लगते हैं, यह स्वाभाविक बात है। परन्तु यदि इस प्रकार की टीकाओं से लोग डरते, तो संसार से नवीनता का लोप हो जाता। हमारा यह मतलब नहीं कि पादान्त में अनुप्रास वाले छन्द लिखे ही न जाया करें। हमारा कथन इतना ही है कि इस प्रकार के छन्दों के साथ अनुप्रास-हीन छन्द भी लिखे जायँ, बस!

भाषा

कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज में समझ लें और अर्थ को हृदयङ्गम कर सकें। पद्य पढ़ते ही उसका अर्थ बुद्धिस्थ हो जाने से विशेष आनन्द प्राप्त होता है और पढ़ने में जी लगता है। परन्तु जिस काव्य का भावार्थ कठिनता से समझ में आता है, उसके अवलोकन में जी नहीं लगता और बराबर अर्थ का विचार करते-करते उससे विरक्ति हो जाती है। जो कुछ लिखा जाता है, वह इसी अभिप्राय से लिखा जाता है कि लेखक का हृद्गत भाव दूसरे समझ जायँ। यदि इस उद्देश्य ही की सफलता न हुई, तो लिखना ही व्यर्थ हुआ। अतएव

क्लिष्ट की अपेक्षा सरल लिखना ही सब प्रकार वांछनीय है। कालिदास, भवभूति और तुलसीदास के काव्य सरलता के आकार हैं, परम विद्वान होकर भी उन्होंने सरलता ही को विशेष मान दिया है इसीलिए उनके काव्यों का इतना आदर है। जो काव्य सर्वसाधारण की समझ के बाहर होता है, वह बहुत कम लोकमान्य होता है। कवियों को इसका सदैव ध्यान रखना चाहिए।

कविता लिखने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना न करनी चाहिए। शुद्ध भाषा का जितना मान होता है अशुद्ध का उतना नहीं होता। व्याकरण का विचार न करना कवि की तद्विषयक अज्ञानता का सूचक है कोई-कोई कवि व्याकरण के नियमों की ओर दृक्‌पात तक नहीं करते। यह बड़े खेद और लज्जा की बात है। ब्रजभाषा की कविता में कविजन मनमानी निरंकुशता दिखलाते हैं। यह उचित नहीं। जहाँ तक सम्भव हो शब्दों का मूल-रूप न बिगड़ना चाहिए।

मुहाविरे का भी विचार रखना चाहिए। बे-मुहाविरा-भाषा अच्छी नहीं लगती। "क्रोध क्षमा कीजिए" इत्यादि वाक्य कान को अतिशय पीड़ा पहुँचाते हैं। मुहाविरा ही भाषा का प्राण है, उसे जिसने नहीं जाना, उसने कुछ नहीं जाना उसकी भाषा कदापि आदरणीय नहीं हो सकती।

विषय के अनुकूल शब्द-स्थापना करनी चाहिए। कविता एक अपूर्व रसायन है। उसके रस की सिद्धि के लिए बड़ी सावधानी बड़ी मनोयोगिता और बड़ी चतुराई आवश्यक होती है। रसायन सिद्ध करने में आँच के न्यूनाधिक होने से जैसे रस बिगड़ जाता है, वैसे ही यथोचित् शब्दों का उपयोग न करने से काव्यरूपी रस भी बिगड़ जाता है। किसी किसी स्थल-विशेष पर रूक्षाक्षरवाले शब्द अच्छे लगते हैं; परन्तु और सर्वत्र ललित

और मधुर शब्दों का ही प्रयोग करना उचित है। शब्द चुनने में अक्षर-मैत्री का विशेष विचार रखना चाहिये। अच्छे अर्थ का द्योतक न होकर भी कोई-कोई पद्य केवल अपनी मधुरता ही से पढ़ने वालों के अन्तःकरण को द्रवीभूत कर देता है। "टुटत अङ्ग बैठे तरु जाई" इत्यादि वाक्य लिखना हिन्दी की कविता को कलङ्कित करना है।

शब्दों को यथा-स्थान रखना चाहिये। शब्द-स्थापना ठीक न होने से कविता की दुर्दशा होती है और अर्थांश में जो क्लिष्टता आ जाती है, उसके उदाहरण 'हिन्दी-कालिदास की समालोचना' में दिये जा चुके हैं।

गद्य और पद्य की भाषा पृथक्-पृथक न होनी चाहिये। हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जिसके गद्य में एक प्रकार की और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा लिखी जाती है। सभ्य-समाज की जो भाषा हो उसी भाषा में गद्य-पद्यात्मक साहित्य होना चाहिये। गद्य का प्रचार हिन्दी में थोड़े दिनों से हुआ है। पहले गद्य प्रायः न था ; हमारा साहित्य केवल पद्यमय था। गद्य-साहित्य की उत्पत्ति के पहले पद्य में व्रजभाषा ही का सार्वदेशिक प्रयोग होता था। अब कुछ अन्तर होने लगा है। गद्य की इस समय उन्नति हो रही है। अतएव अब यह सम्भव नहीं कि गद्य की भाषा का प्रभाव पद्य पर न पड़े। जो प्रबल होता है वह निर्बल को अवश्य अपने वशीभूत कर लेता है। यह बात भाषा के सम्बन्ध में भी तद्वत् पाई जाती है। पचास वर्ष पहले के कवियों की भाषा इस समय के कवियों की भाषा से मिला कर देखिए। देखने से तत्काल विदित हो जायगा कि आधुनिक कवियों पर बोल-चाल की हिन्दी भाषा ने अपना प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया है ; उनकी लिखी व्रजभाषा की कविता में बोल-चाल (खड़ी-बोली) के जितने शब्द और मुहाविरे मिलेंगे उतने ५०

वर्ष पहले कवियों की कविता मे कदापि न मिलेंगे। यह निश्चित है कि किस समय बोल-चाल की हिन्दी-भाषा, व्रज-भाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी। इसलिए कवियों को चाहिए कि वे क्रम क्रम से गद्य की भाषा मे भी कविता करना आरम्भ करें—[illegible] करना [illegible] हिन्दी [illegible] उनके [illegible] पद्य मे व्रज की भाषा का आधिपत्य बहुत दिनो तक नहीं रह सकता।

अर्थ

अर्थ-सौरस्य ही कविता का प्राण है। जिस पद्य मे अर्थ का चमत्कार नही, वह कविता नहीं। कवि जिस विषय का वर्णन करे उस विषय से उसका तादात्म्य हो जाना चाहिए। ऐसा न होने से अर्थ-सौरस्य नही आ सकता। विलाप वर्णन करने मे कवि के मन में यह भावना होना चाहिए कि वह स्वयं विलाप कर रहा है और वर्णित दुःख का स्वयं अनुभव कर रहा है। प्राकृतिक वर्णन लिखने के समय उसके अन्तःकरण मे यह दृढ़ संस्कार होना चाहिए कि वर्ण्यमान नदी, पर्वत अथवा वन के सम्मुख वह स्वयं उपस्थित होकर उनकी शोभा देख रहा है। जब कवि की आत्मा का वर्ण्य विषयों से इस प्रकार निकट सम्बन्ध हो जाता है, तभी उसका किया हुआ वर्णन यथार्थ होता है और तभी उसकी कविता पढ़ कर पढ़ने वालो के हृदय पर तद्वत् भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। कविता करने में, हमारी समझ मे, अलङ्कारो को बलात् लाने का प्रयत्न न करना चाहिए। विषय-वर्णन के झोंके मे जो कुछ मुख मे निकले उसे ही रहने देना चाहिए। बलात् किसी अर्थ के लाने की चेष्टा करने की अपेक्षा प्रकृति भाव से जो कुछ आ जाय उसे ही पद्य-बद्ध कर देना

अधिक सरस और आह्लादकारक होता है। अपने मनोनीति अर्थ को इस प्रकार व्यक्त करना चाहिए कि पद्य पढ़ते ही पढ़ने वाले उसे तत्क्षण हृदयङ्गम कर सकें, क्लिष्ट कल्पना अथवा सोच-विचार करने की आवश्यकता न पड़े।

बहुत से शब्द ऐसे हैं जो सामान्य रीति से सब एक ही अर्थ के व्यञ्जक हैं, परन्तु विशेष ध्यानपूर्वक देखने अथवा धातु के अर्थ का विचार करने से पृथक्-पृथक् शब्दों में पृथक्-पृथक् शक्तियों का गर्भित रहना प्रकट होता है। 'तन्वी' शब्द का सामान्य अर्थ स्थल-विशेष में स्त्री होता है। परन्तु 'तनु' शब्द का अर्थ कृश होने के कारण 'तन्वी' का विशेष अर्थ दुर्बल है। यदि कहें कि 'यह तन्वी अपने पति के साथ सुख से अपने घर में रहती है" तो यहाँ 'तन्वी' शब्द उस अर्थ का व्यञ्जक नहीं हो सकता जो अर्थ 'रामा' इत्यादि शब्दों का होता है। परन्तु यदि कहें कि "तन्वी अपने प्रियतम का वियोग बड़े धैर्य से सहन कर रही है" तो यहाँ 'तन्वी' शब्द की गर्भित शक्ति से वियोग-उद्योत अर्थ को सहायता पहुँचती है। अतः ऐसे स्थल पर इस शब्द का प्रयोग बहुत प्रशस्त है। अर्थ-सौरस्य के लिए, जहाँ तक सम्भव हो, ऐसे ही ऐसे शक्तिमान् शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

घनाक्षरी और सवैया आदि लिखने वाले कुछ कवियों की कविता में कभी-कभी अनेक निरर्थक शब्द आ जाते हैं। कभी-कभी शब्दों के ऐसे विकृत-रूप प्रयुक्त हो जाते हैं कि उनका अर्थ ही समझ में नहीं आता। कभी-कभी पादान्त में समान अक्षर लाने ही के लिए निरर्थक अथवा अपभ्रंश शब्द लाये जाते हैं। व्रजभाषा की कविता, अथवा घनाक्षरी या सवैया के हम प्रतिकूल नहीं, परन्तु हमारा मत यह है कि अर्थ के सौरस्य ही

की ओर कवियों का ध्यान अधिक होना चाहिए, शब्दों के आडम्बर की ओर नहीं। अर्थ-हीन अथवा अनुपयोगी शब्द न लिखे जाने चाहिए और न शब्दों के प्रकृत रूप को बिगाड़ना ही चाहिए। शब्दों के बिगाड़ने से उनके बिगड़े हुए रूप पढ़ने वालों के कान को खटकते हैं और जिस अर्थ में वे प्रयुक्त होते हैं उस अर्थ की वे कभी-कभी पोषकता भी नहीं करते।

अश्लीलता और ग्राम्यता-गर्भित अर्थों से कविता को कभी न दूषित करना चाहिए और न देश, काल तथा लोक आदि के विरुद्ध कोई बात कहनी चाहिए। कविता को सरस बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। नीरस पद्यों का कभी आदर नहीं होता। जिसे पढ़ते ही पढ़ने वाले के मुख से 'वाह' न निकले, अथवा उसका मस्तक न हिलने लगे, अथवा उसकी दन्त-पंक्ति न दिखलाई देने लगे, अथवा जिस रस की कविता है, उस रस के अनुकूल वह व्यापार न करने लगे, तो वह कविता कविता ही नहीं, वह तुकबन्दी मात्र है। कविता के सरस होने ही से ये उपर्युक्त बातें हो सकती हैं, अन्यथा नहीं। रस ही कविता का सब से बड़ा गुण है। श्रीकण्ठ-चरित के कर्ता ने ठीक कहा है—

तैस्तैरलंकृतिशतैरवतंसितोऽपि
रूढो महत्यपि पदे धृतसौष्ठवोऽपि।
नूनं विना घनरसप्रसराभिषेकं
काव्याधिराजपदमर्हति न प्रबन्धः॥

अर्थात् सैकड़ों अलङ्कारों से अलंकृत होकर भी, शब्द शास्त्र के उच्चासन पर अधिरूढ़ होकर भी और सब प्रकार सौष्ठव को धारण करके भी, रस-रूपी अभिषेक के बिना, कोई भी प्रबन्ध काव्याधिराज पदवी को नहीं पहुँचता।

विषय

कविता का विषय मनोरञ्जक और उपदेश-जनक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि-कौतूहल का अद्भुत-अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबन्ध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के "गतागत" की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्य्यन्त पशु; भिक्षुक से लेकर राजा पर्य्यन्त मनुष्य; बिन्दु से लेकर समुद्र पर्य्यन्त जल; अनन्त आकाश; अनन्त पृथ्वी; अनन्त पर्वत—सभी पर कविता हो सकती है; सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरञ्जन हो सकता है। फिर क्या कारण है कि इन विषयों को छोड़ कर कोई कोई कवि स्त्रियों की चेष्टाओं का वर्णन करना ही कविता की चरम सीमा समझते हैं? केवल अविचार और अन्ध-परम्परा! यदि "मेघनाद वध" अथवा "यशवन्तराव महाकाव्य" वे नहीं लिख सकते, तो उनको ईश्वर की निःसीम सृष्टि में से छोटे-छोटे सजीव अथवा निर्जीव पदार्थों को चुनकर उन्हीं पर छोटी-छोटी कविताएँ करनी चाहिए। अभ्यास करते-करते शायद, कभी, किसी समय, वे इससे अधिक योग्यता दिखलाने में समर्थ हों और दण्डी कवि के कथनानुसार[1] शायद सभी वाग्देवी उन पर सचमुच ही प्रसन्न हो जायँ। नायिका के हाव-भावादि के वर्णन का अभ्यास करने वालों पर भी सर-

[1] न विद्यते यद्यपि पूर्व वासना गुणानुबन्धि प्रतिभानमद्भुतम्।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्॥

—काव्यादर्श

अर्थात्—पूर्ववासना और अद्भुत प्रतिभा न होने पर भी शास्त्र के अनुशीलन और यत्न के अभिनिवेश द्वारा उपासना की गई सरस्वती अनुग्रह अवश्य ही करती है।

स्वती की कृपा हो सकती है, परन्तु तदर्थ उसकी उपासना न करना ही अच्छा है।

संस्कृत में सहस्रश उत्तमोत्तम काव्य विद्यमान हैं। अतः उस भाषा में काव्यप्रकाश, ध्वन्यालोक, कुवलयानन्द, रसतरंगिणी आदि साहित्य के अनेक लक्षण-ग्रन्थों का होना अनुचित नहीं। परन्तु हिन्दी-भाषा में सत्काव्य का प्रायः अभाव है। इस कारण अलंकार और रस-विवेचन के झगड़ों से जटिल ग्रन्थों के बनने की हम कोई आवश्यकता नहीं देखते। 'हेला' हाव का लक्षण और उसका चित्र देखने से क्या लाभ? अथवा दीपक अलंकार व सूक्ष्म से भी सूक्ष्म भेदों को जानने का क्या उपयोग? हिन्दी में ऐसे कितने काव्य हैं जिनमें ये सब भेद पाये जाते हैं? हमारी अल्प-बुद्धि के अनुसार रस कुसुमाकर और जसवन्तजसो(!)भूषण के समान ग्रन्थों की इस समय, आवश्यकता नहीं। इनके स्थान में यदि कोई कवि किसी आदर्श-पुरुष के चरित्र का अवलम्बन करके एक अच्छा काव्य लिखता तो उससे हिन्दी साहित्य को अलभ्य लाभ होता। कनिष्ठा और ज्येष्ठा का भेद और उनके चित्र देखे तो क्या और न देखे तो क्या? और उत्प्रेक्षा अलंकार का लक्षण नामानुसार सिद्ध हो गया तो क्या और न सिद्ध हुआ तो क्या? नायिकाओं के भी झगड़ने में उलझने से हानि के अतिरिक्त लाभ की कोई सम्भावना नहीं। हिन्दी काव्य की हीन दशा को देखकर कवियों को चाहिए कि वे अपनी विद्या, अपनी बुद्धि और अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग इस प्रकार से ग्रन्थ लिखने में न करें। अच्छे काव्य लिखने का उन्हें प्रयत्न करना चाहिए। अलङ्कार, रस और नायिका-निरूपण बहुत हो चुका।

इस समय, कवियों का एक दल कवि-समाजों और कवि-मण्डलों में बद्ध होकर समस्या-पूर्ति करने में व्यग्र हो रहा है

इन पूर्तिकारों में से कुछ को छोड़ कर शेष, कविता के नाम की भी बड़ी ही अवहेलना कर रहे हैं। इनको चाहिए कि बिना योग्यता सम्पादन किये समस्यापूर्ति करने के झगड़े में न पड़ें। अच्छी समस्यापूर्ति करना असाधारण प्रतिभावना का काम है। एक साधारण कवि अपने मनोऽनुकूल विषय पर एक ही घड़ी में चाहे ५० पद्य लिख डाले और वे सब चाहे अच्छे भी हों; परन्तु किसी समस्या के टुकड़े पर अच्छी कविता करने में वह शायद ही सफल-मनोरथ होगा। समस्यापूर्ति के लिए असामान्य कौशल और प्रबल प्रतिभा की आवश्यकता है। इस समय प्रतिभा का पूरा-पूरा विकास बहुत कम देखा जाता है; इसलिए समस्याओं की पूर्तियाँ भी प्रायः अच्छी नहीं होतीं। हमारी यह सम्मति है कि समस्या-पूर्त्ति के विषय को छोड़ कर अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार विषयों को चुन कर, कवि को यदि बड़ी न हो सके, तो छोटी ही छोटी स्वतन्त्र कविता करनी चाहिए; क्योंकि इस प्रकार की कविताओं का हिन्दी में प्रायः अभाव है।

संस्कृत और अँग्रेजी काव्यों का अनुवाद हिन्दी में करने की ओर भी कवियों की रुचि बढ़ने लगी है। परन्तु स्वतन्त्र कविता करने की अपेक्षा दूसरे की कविता का अनुवाद अन्य भाषा में करना बड़ा कठिन काम है। एक शीशी में भरे हुए इत्र को जब दूसरी शीशी में डालने लगते हैं तब डालने ही में पहले कठिनता उपस्थित होती है; और यदि बिना दो-चार बूँद इधर-उधर टपके वह दूसरी शीशी में चला भी गया, तो इस उलट फेर में उसके सुवास का विशेषाङ्क अवश्य उड़ जाता है। एक भाषा की कविता का दूसरी भाषा में अनुवाद करने वालों को यह बात स्मरण रखनी चाहिए। बुरा अनुवाद करना मूल कवि का अपमान करना है; क्योंकि अनुवाद के द्वारा उनके गुणों का ठीक-ठीक परिचय न होने के कारण पढ़ने वालों की दृष्टि में वह हीन

हो जाता है। इसलिए किसी पुस्तक का अनुवाद आरम्भ करने के पहले अनुवादक को अपनी योग्यता का विचार कर लेना नितान्त आवश्यक है। सच तो यह है कि जो अच्छा कवि है वही अच्छा अनुवाद करने में समर्थ हो सकता है; दूसरा नहीं। परन्तु अच्छा कवि होना भी दुर्लभ है। महाकवि मङ्खक ने ठीक कहा है—

तान्यर्थरत्नानि न सन्ति येषां सुवर्णसंघेन च ये न पूर्णाः।
ते रीतिमात्रेण दरिद्रकल्पा यान्तीश्वरत्वं हि कथं कवीनाम्॥

अर्थात्—अर्थ-रत्न और स्वर्ण-समूह से जो परिपूर्ण नहीं हैं, वे महादरिद्री लोग केवल रीति-मात्रा का अवलम्बन करके कवीश्वर की पदवी कदापि नहीं पा सकते।

काव्य के गुणों और दोषों की विवेचना संस्कृत की जिन पुस्तकों में है, उनमें कवियों के कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य पर बहुत कुछ कहा गया है। परन्तु उन सब बातों का विचार हम यहाँ पर नहीं कर सकते। केवल स्थूल-स्थूल बातों ही के विचार की इच्छा से हमने यह लेख आरम्भ किया था। अतएव, अब हम इसे यहीं समाप्त करते हैं।

[२]

संसार में ईश्वर या देवताओं का अवतार कई प्रकार का और कई कामों के लिए होता है। अलौकिक कार्य करने वाले प्रतिभाशाली मनुष्य ही अवतार हैं। स्वाभाविक कवि भी एक प्रकार के अवतार हैं। इस पर कदाचित कोई प्रश्न करे कि अकेले कवि ही क्यों अवतार माने गये, और लेखक इस पद पर क्यों न बिठाये गये? तो यह कहा जा सकता है कि लेखक का समावेश कवि में है, पर कवियों में कुछ ऐसी विशेष शक्ति होती है, जिसके कारण उनका प्रभाव लोगों पर बहुत पड़ता है। अब

मुख्य प्रश्न यह है कि कवि का अवतार होता ही क्यों है? पहुँचे हुए पण्डितों का कथन है कि कवि भी "धर्म्म-संस्थापनार्थाय" उत्पन्न होते हैं। उनका काम केवल तुक मिलाना या "पावस-पचासा" लिखना ही नहीं। तुलसीदास ने कवि होकर वैष्णव-धर्म की स्थापना की है, मत-मतान्तरों का भेद मिटाया है और "ज्ञान के पन्थ को कृपाण की धार" बताया है। प्रायः उसी प्रकार का काम, दूसरे रूप में सूरदास, कबीर और लल्लूलाल ने किया है। हरिश्चन्द्र ने शूरता, स्वदेश भक्ति और सत्य प्रेम का धर्म चलाया है। जिन कवियों ने केवल संस्कृत भाषा ही का भण्डार भरा है वे भी, किसी न किसी रूप में, लोगों के उपदेशक थे। हिन्दी के जितने कवि प्रसिद्ध हैं उन्होंने देश, काल, अवस्था और पात्र के अनुसार ही कविता की है। दूसरे देशों और दूसरी भाषाओं के कवियों का नाम लेने की यहाँ आवश्यकता नहीं, क्योंकि हिन्दी के पूर्ववर्ती कवियों ने, समय-समय पर अपने कर्त्तव्य को समझा है और उसका पालन भी किया है। राजा शिवप्रसाद-सदृश इतिहासकारों ने भी अवतार का काम किया है, यद्यपि उनके विचारों को लोग मानते नहीं। सारांश यह कि कवियों को ऐसा करना पड़ता है—वे स्वभाव ही से ऐसा करते हैं—कि संसार का कल्याण हो और इस प्रकार उनका नाम आप ही आप अमर हो जाय। भूषण के समान कवियों ने तो राजनीतिक आन्दोलन तक उपस्थित कर दिया है। "पूर्ण" कवि ने हमें यह उपदेश दिया है कि जो लोग बोल-चाल की भाषा से किसी प्रकार अप्रसन्न हैं वे भी अपनी पुरानी व्रज (कविता) की बोली को बिना तोड़े-मरोड़े काम में ला सकते हैं, और यदि वे चाहें तो बोल-चाल की भाषा में कविता कर सकते हैं। सारांश यह है कि कविता लिखते समय कवि के सामने एक ऊँचा उद्देश्य अवश्य रहना चाहिए। केवल कविता ही के लिए कविता करना

एक तमाशा है। हिन्दी में कविता-सम्बन्धी इस प्रकार के लेख पढ़कर बाहर के लोग यह अनुमान कर सकते हैं कि कदाचित हिन्दी के कवि अपना कर्त्तव्य नहीं जानते, नहीं तो उनके लिए ऐसा लेख न लिखा जाता। यदि कोई मराठी या बंगला के समाचार-पत्र या मासिक-पत्र पढ़े, तो हमें उनमें ऐसे लेख न मिलेंगे। ऐसे लेख उन भाषाओं में कम से कम चालीस वर्ष पहले निकल चुके हैं। और उन लेखों के अनुसार उन भाषाओं की कविता इतने समय में इतनी ऊंची हो गई है कि समालोचकों के लिए जन्म भर विचार करने की सामग्री तैयार है। भाषा या साहित्य की जब जैसी अवस्था होती है, तब उसमें उसी प्रकार के लेख निकलते हैं। हम यहाँ पर इस विषय का एक उदाहरण देते हैं। एक बार 'छत्तीसगढ़-मित्र' में हिन्दी व्याकरण के विषय में कुछ लेख निकले थे। उस पर एक महाराष्ट्र सज्जन ने बम्बई से (सपादक) से पूछा कि क्या हिन्दी में ही व्याकरण नहीं? इस पर सुनने में आया कि क्या सम्पादक ने उनको यह उत्तर दिया कि और-और भाषाओं के समान हिन्दी में कोई व्याकरण है। परन्तु इस विषय का निरूपण विदेशियों ने किया है। हिन्दुस्तानी लोग न उसे खोज सके हैं और न खोज हो जाने पर भी उसकी ओर ध्यान देते हैं।

कवि की कल्पना-शक्ति तीव्र होती है। इस कल्पना शक्ति के द्वारा वह कठिन बातों को ऐसे अनोखे ढङ्ग से सबके सामने रखता है कि वे सहज ही समझ में आ जाती हैं। इसी शक्ति से वह अनजाने हुए पदार्थों या दृश्यों का चित्र इतना मनोहर खींचता

रूप धारण करती है, और न अपना स्वाभाविक रूखापन ह

प्रकट करती है, किन्तु भीतर ही भीतर मन को उकसा देती है। ताजमहल का वर्णन करते समय इस बात पर ध्यान न देगा कि यह किस सन् में बना था, इसकी लम्बाई-चौड़ाई कितनी है, या इसका पत्थर कहाँ से आया है ? इमारत को देखकर उसका मन कदाचित् उसके मीनार से भी ऊँचा बढ़ जायगा और वह उस समय की कल्पना करने लगेगा जब बादशाह की बेगम, मरते समय, रौजे की वसीयत कर रही थी। उसके मन में पुराने और नये समय के मिलान का भी चित्र खिंच जायगा और वह समय के फेर की घटनाओं को सोचने लगेगा। मनोहर वर्णन और शिक्षा के साथ-साथ कवि अपने शब्द और वाक्य भी ऐसे मनोहर बनाता है कि पढ़ने वाले के आनन्द की सीमा नहीं रहती। कविता लिखते समय जो-जो भाव कवि के हृदय में उदित होते हैं, वही भाव पढ़ने वाले के हृदय में उत्पन्न हो सकते हैं। इसके लिए पढ़ने वाला सहृदय होना चाहिए, नहीं तो भैंस के आगे बीन बजने लगेगी। यदि स्वतः कवि में सहृदयता न हो तो फिर उसका श्रम ही वृथा है। मनोविज्ञानी लोग कदाचित किसी समय हमको यह बता सकेंगे कि मनोविकार प्रकट करने के लिए छन्द ही का उपयोग क्यों होता है ? गद्य में भी कोई-कोई लेखक—विशेषकर उपन्यास लेखक—ऐसा मनोहर वर्णन करते हैं और ऐसे भाव प्रकट करते हैं कि उनका गद्य पद्य हो जाता है। जो हो अभी तो कवि लोग ही विशेषकर यह काम करते हैं और उसके लिए छन्द काम में लाते हैं।

आज-कल हिन्दी संक्रान्ति की अवस्था में है। हिन्दी कवि का कर्त्तव्य यह है कि वह लोगों की रुचि का विचार रखकर अपनी कविता ऐसी सहज और मनोहर रचे कि साधारण पढ़े-लिखे लोगों में भी पुरानी कविता के साथ-साथ नई कविता पढ़ने का अनुराग उत्पन्न हो जाय। पढ़ने वालों के मन में नई-नई

उपमाओं को, नये-नये शब्दों को और नये-नये विचारों को समझने की योग्यता उत्पन्न करना कवि ही का कर्त्तव्य है। जब लोगों का झुकाव इस ओर होने लगे तब, समय समय पर, कल्पित अथवा सत्य आख्यानों के द्वारा सामाजिक, नैतिक और धार्मिक विषयों की मनोहर शिक्षा दे। जब जो विषय उसके अवलोकन में आवे, तभी उस पर अपनी स्वाभाविक शक्ति से कविता लिख कर लोगों को परोक्ष-रूप से सचेत करे। कविता के प्रभाव का एक छोटा-सा उदाहरण सुनिए। पद्माकर कवि के घराने के लोगों में विवाह के समय कवित्त पढ़ने की चाल है। उनकी जाति के लोग कहते हैं कि यह चाल पद्माकर के समय से चली है और वह अब तक चली जाती है। क्या वह बात आजकल के कवियों में नहीं हो सकती? जान पड़ता है कि "अब के कवि खद्योत सम जहँ-तहँ करहिं प्रकाश"—जिसने यह दोहा लिखा है उसको बड़ी दूर की सूझी है। बोल-चाल की भाषा में आज तक ऐसी कोई कविता नहीं बनी, जिसका प्रचार "चन्द्रकान्ता[1]" के समान साधारण पढ़े लिखे लोगों में भी हुआ हो। सदोष होने पर भी इस उपन्यास के कारण पुरुषों और स्त्रियों में उपन्यास पढ़ने की रुचि उत्पन्न हुई है। इसी प्रकार जब बोलचाल की भाषा की कविता को, या आजकल के और दूसरे पद्यों को साधारण लोग भी पढ़ने लगें, तब समझना चाहिए कि कविता और कवि लोक-प्रिय हैं। आजकल की संस्कृत-भरी कविता का रचा जाना और भी अधिक हानिकारक है।

सारांश यह कि यदि आजकल की कविता में शास्त्रोक्त गुणों को छोड़ कर नीचे लिखे हुए गुण हों तो सम्भव है कि वह लोकप्रिय होगी—

---

[1]यह आसन अब 'भारत भारती' और 'जयद्रथ-वध' को मिल गया है। १९१८।

(१) कविता में साधारण लोगों की अवस्था, विचार और मनोविकारों का वर्णन हो।

(२) इसमें धीरज, साहस, प्रेम और दया आदि गुणों के उदाहरण रहें।

(३) कल्पना सूक्ष्म और उपमादिक अलङ्कार गूढ़ न हों।

(४) भाषा सहज, स्वाभाविक और मनोहर हो।

(५) छन्द सीधा, परिचित, सुहावना और वर्णन के अनुकूल हो।

२—कवि बनने के लिए सापेक्ष साधन

आजकल हिन्दी के कवियों ने बड़ा जोर पकड़ा है। जिधर देखिए उधर कवि ही कवि। जहाँ देखिए वहाँ कविता ही कविता। कवि बनाने के कारखाने भी दिन-रात जारी हैं। कोई कहता है, हमारे पिङ्गल के प्रचार से गाँव-गाँव में कवि हो सकते हैं, कोई कहता है, हमारा काव्य-कल्पद्रुम पढ़ लेने से सैकड़ों कालिदास पैदा हो सकते हैं। कोई कहता है हमारा काव्य-भास्कर ही कवि बनने के लिए एकमात्र साधन है; उसकी एक ही झाँकी मनुष्य को कवित्व की प्राप्ति करा सकती है। कोई कहता है, हमारी सभा की दी हुई समस्याओं की पूर्तियाँ करने से अनेक व्यास और वाल्मीकि फिर जन्म ले सकते हैं। शायद इन्हीं लोगों के उद्योग का फल है जो हिन्दी में आजकल इतने कवियों का एक ही साथ प्रादुर्भाव हो गया है। पर, इन कविता-कुबेरों के प्रादुर्भाव से सरस हृदय सज्जन बहुत तङ्ग हो रहे हैं। जो काम बहुत कठिन समझा गया है, वह इन कवियों के लिए खेल हो रहा है। कविता करना अन्य लोग चाहे जैसा सहज समझें, हम तो यह एक तरह दुःसाध्य ही जान पड़ता है। अज्ञता और अविवेक के कारण कुछ दिन हमने भी तुकबन्दी का अभ्यास किया था। पर कुछ समझ में आते ही हमने अपने को इस काम का अनधिकारी समझा। अतएव उस मार्ग से जाना ही प्रायः बन्द कर दिया।

विक्रम के ग्यारहवें शतक में, काश्मीर में, अनन्तदेव नामक एक राजा था। उसके शासन-समय में क्षेमेन्द्र नामक एक महाकवि हो गया है। वह बहुश्रुत, बहुज्ञ और बहुदर्शी विद्वान् था। उसकी प्रतिभा बड़ी ही विलक्षण थी। उसकी बुद्धि इतनी व्यापक और सूक्ष्म थी कि प्रत्येक विषय उसके लिए हस्तामलकवत् था। उसने, न मालूम, कितने ग्रन्थ बना डाले। उनमें से दस-बीस तो छप कर प्रकाशित भी हो गए हैं। अपने शिष्यों की शिक्षा के लिए छोटे-छोटे ग्रन्थ तो वह हँसते-हँसते बना डालता था। जरा उसकी बुद्धि की व्यापकता तो देखिए। कभी तो आप वेदान्त पर ग्रन्थ लिखते थे; कभी कुट्टिनियों की लीला का उद्घाटन करने के लिए "समय मातृका" निर्माण करते थे; कभी "दशावतार-चरित्र" लिख कर विष्णु भगवान् की लीला का वर्णन करते थे; कभी बौद्ध धर्म के तत्त्वों से भरा हुआ महाकाव्य लिखते थे; कभी काव्य और छन्दःशास्त्र पर ग्रन्थ रचना करते थे और कभी "कला-विलास" बनाने बैठ जाते थे। इसी से कहते हैं कि क्षेमेन्द्र की प्रतिभा बड़ी प्रखर थी। क्षेमेन्द्र का 'बोधिसत्वाव-दान-कल्पलता' नामक ग्रन्थ एक अपूर्व काव्य है। उसकी भाषा प्राञ्जल और भाव तथा कवित्व बहुत मनोहारी हैं। इस ग्रन्थ का एक तिब्बतीय अनुवाद, अभी कुछ ही समय हुआ, प्राप्त हुआ है। इसे बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी प्रकाशित कर रही है। श्रीयुत शरच्चन्द्रदास इसके सम्पादक हैं।

क्षेमेन्द्र ने 'कवि-कण्ठाभरण' नाम का एक छोटा-सा ग्रन्थ लिखा है। उसमें आपने बताया है कि किन साधनों से मनुष्य कवि हो सकता है और किस तरह उसकी तुकबन्दी, कविता कहलायी जाने योग्य हो सकती है। क्षेमेन्द्र खुद भी महाकवि था। अतएव उसके बताये हुए साधन अवश्य ही बड़े महत्त्व के होने

चाहिए। यही समझकर हम अपने हिन्दी के कवियों के जानने के लिए क्षेमेन्द्र के निर्दिष्ट साधनों को थोड़े में उल्लेख करते हैं।

कवि होने के लिये पाँच बातें अपेक्षित हैं। वे पाँच बातें ये हैं— (१) कवित्व-शक्ति (२) शिक्षा (३) चमत्कारोत्पादन (४) गुण-दोष ज्ञान (५) परिचय-चारुता।

अब इन पाँचों का संक्षिप्त सुनिए—

कवित्व-शक्ति

किसी-किसी में कवित्व-शक्ति बीज-रूप से रहती है। उसे अंकुरित करना पड़ता है। जिसमें वह नहीं होती वह अच्छा कवि नहीं हो सकता। कवित्व-शक्ति को जागृत करने के दो उपाय हैं—दिव्य और पौरुषेय।

सरस्वती देवी अथवा मातृका—मन्त्र जप करना, उसकी मूर्ति का ध्यान करना और उसके मन्त्र का पूजन करना इत्यादि दिव्य उपाय।

पौरुषेय उपाय यह है कि किसी अच्छे कवि को गुरु बना कर उससे यथाविधि काव्य-शास्त्र का अध्ययन करना।

कवि बनने की इच्छा से काव्य-शास्त्र का अध्ययन करने वाले शिष्य तीन प्रकार के होते हैं—अल्प-प्रयत्न-साध्य, कृच्छ्र-साध्य और असाध्य।

थोड़े ही अध्ययन से जो सफल-मनोरथ होजायँ वे अल्प-प्रयत्न-साध्य, अध्ययन में विशेष परिश्रम करने से जिन्हें इष्ट लाभ हो वे कृच्छ्र-साध्य; जो बरसों सिर पीटने पर भी कुछ न कर सकें वे असाध्य समझे जाते हैं।

अल्प-प्रयत्न साध्य शिष्यों के कर्त्तव्य सुनिए।

ऐसे पुरुषों को चाहिए कि वे किसी अच्छे साहित्य-ज्ञाता कवि से अध्ययन करें। जो केवल तार्किक या वैयाकरण हो उससे सदा दूर रहें। जो सरस-हृदय हो, स्वयं कवि हो, व्या-

करण भी जानता हो, छन्दो-ग्रन्थों का भी पारगामी हो उसे गुरु बनाना चाहिए। अच्छे-अच्छे काव्यों को उसके मुख से सुनना चाहिए। गाथा प्राकृत तथा अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओं के पद्यों का भी सावधान होकर श्रवण करना चाहिए। चमत्कार-पूर्ण उक्तियों के विषय में चर्चा करनी चाहिए। प्रत्येक रस के आस्वादन में तन्मय हो जाना चाहिए। जहाँ जिस गुण का प्रकर्ष हो वहाँ अभिनन्दन करके आनन्दित होना चाहिए। विवेक बुद्धि द्वारा भले-बुरे काव्य को पहिचानने की चेष्टा करनी चाहिए। ऐसा करते-करते कुछ दिनों में कवित्व-शक्ति अंकुरित हो उठती है और उस शक्ति से सम्पन्न होने पर कविता करने की योग्यता आ जाती है।

कृच्छ्र-साध्य जनों को चाहिए कि कालिदास आदि सत्कवियों के सारे प्रबन्धों को आद्यन्त पढ़ें और खूब विचार-पूर्वक पढ़ें। इतिहासों का भी अध्ययन करें। तार्किकों की उग्र-सन्धि से दूर ही रहें। कविता के मधुर सौरभ को उससे नष्ट होने से बचाते रहें। अभ्यास के लिए कोई नया पद्य लिखें तो महा-कवियों की शैली को सदा ध्यान में रक्खें। पुराने कवियों के श्लोकों के पाद, पद और वाक्य आदि को निकाल कर उनकी जगह पर अपने बनाए पाद, पद और वाक्य रक्खें। अभ्यास बढ़ाने के लिए वाक्यार्थ-शून्य पद्य बनावें। कभी-कभी अन्य कवियों की रचना में फेर-फार करके, कुछ अपना कुछ उनका रख कर, नूतन अर्थ का समावेश करने की चेष्टा करें।

जो लोग किसी बड़े रोग से पीड़ित हैं; व्याकरण और तर्क-शास्त्र के सतताभ्यास से जिनकी सहृदयता नष्ट हो गई है; अत-एव सुकवियों की कविता सुनने से भी जिन्हें कुछ आनन्द नहीं प्राप्त होता, उन्हें असाध्य समझना चाहिए। उनका हृदय पत्थर के समान कड़ा हो जाता है; उनकी कोमलता बिलकुल ही जाती

रहती है—

न तस्य वक्तृत्वसमुद्भवः स्याच्छिक्षाविशेषैरपि सुप्रयुक्तैः।
न गर्दभो गायति शिक्षितोऽपि संदर्शितं पश्यति नार्कमन्धः॥

उसे चाहे कैसा ही अच्छा गुरु क्यों न मिले और चाहे कितनी ही अच्छी शिक्षा क्यों न दी जाय वह कवि नहीं हो सकता। सिखलाने से भी क्या गधा कभी गीत गा सकता है और हजार दफे दिखलाने से भी क्या अन्धा कभी सूर्य को देख सकता है।

शिक्षा

कवित्व-शक्ति स्फुरित हो जाने पर क्या करना चाहिए—किस तरह की शिक्षा से उनकी प्रखरता को बढ़ाना चाहिए—सो भी सुनिए—

प्राप्त-कवित्व-शक्ति कवि को चाहिए कि वह वृत्त पूरण करने का उद्योग करे; समस्यापूर्ति करे; दूसरे की कविताओं का पाठ किया करे; काव्य के अङ्गों का ज्ञान प्राप्त करे; सत्कवियों की सङ्गति करे; महाकवियों के काव्यार्थ का विचार किया करे; प्रसन्न चित्त रहे; अच्छे वेश में रहा करे, नाटकों का अभिनय देखे; गाना सुनने का शौक रक्खे; लोकाचार का ज्ञान प्राप्त करे; इतिहास देखे, चित्रकारों के अच्छे-अच्छे चित्रों और शिल्पियों के अच्छे-अच्छे शिल्प कार्यों का अवलोकन करे, वीरों का युद्ध देखे, श्मशान और अरण्य में घूमे और आर्त्त तथा दुःखी मनुष्य के शोक-प्रलाप पूर्ण वचन सुने। इन बातों से शिक्षा प्राप्त करना उसके लिए बहुत जरूरी है।

परन्तु इतनी ही शिक्षा बस नहीं, और भी उसे बहुत कुछ करना चाहिए; उसे मीठा और स्निग्ध भोजन करना चाहिए; धातुओं को सम रखना चाहिए, कभी शोक न करना चाहिए; दिन में कुछ सो लेना चाहिए और थोड़ी रात रहे जाग कर अपनी

प्रतिभा को प्रखर करना चाहिए। उस समय कुछ कविता करनी चाहिए; प्राणियों के स्वभाव की परीक्षा करनी चाहिए; समुद्र-तट और पर्वतों की सैर करनी चाहिए; सूर्य्य, चन्द्रमा और तारागणों के स्थान और उनकी गति आदि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए; ऋतुओं की विशेषता और उनका भेद समझना चाहिए; सभाओं में जाना चाहिए; एक बार लिखी हुई कविता का संशोधन दो-तीन दफे करके उसे खूब परिमार्जित करना चाहिए।

सुकवि होने की इच्छा रखने वाले के लिए अभी और भी बहुत से काम हैं। उसे पराधीनता में न रहना चाहिए; अपने उत्कर्ष पर गर्व न करना चाहिए; पराये उत्कर्ष को सहने की आदत डालनी चाहिए; दूसरे की श्लाघा सुनकर उसका अभिनन्दन करना चाहिए, अपनी श्लाघा सुनने में सङ्कोच करना चाहिए; व्युत्पत्ति के लिए—शिक्षा या विद्या-बुद्धि के लिए—सब की शिष्यता स्वीकार करने को तैयार रहना चाहिए; सन्तुष्ट रहना चाहिए; सत्त्वशील बनना चाहिए; किसी से याञ्चा न करनी चाहिए; ग्राम्य और अश्लील बात मुँह से न निकालनी चाहिए; निर्विकार रहना चाहिए; गाम्भीर्य धारण करना चाहिए; दूसरे के द्वारा किये गये आक्षेप सुनकर बिगड़ना न चाहिए और किसी के सामने दीनता न दिखानी चाहिए।

कवि के लिए क्षेमेन्द्र ने इस तरह की शतशिक्षायें दी हैं; पर उनमें से हमने यहाँ कुछ ही का उल्लेख किया है, सबका नहीं। इन शिक्षाओं या उपदेशों पर विचार करने से पाठकों को मालूम होगा कि कवि-कर्म कितना कठिन है। विधाता की सारी सृष्टि का ज्ञान कवि को होना चाहिए—लोक में जो कुछ है सबसे उसे अभिज्ञता प्राप्त करनी चाहिए। प्राकृतिक दृश्यों को खुद देखना और प्राणियों के स्वभाव से भी उसे परिचित होना चाहिये। ये सब बातें इस समय कौन करता है? फिर कहिए, कोई कवि

कैसे हो सकता है? पिङ्गल पढ़ लेने और काव्य-भास्कर या काव्य-कल्पतरु देख जाने से यदि कोई कवि हो सकता तो आज कल कवि गली-गली मारे-मारे फिरते? तुकबन्दी करना और चीज है, कविता करना और चीज।

चमत्कारोत्पादन

शिक्षित कवि की उक्तियों में चमत्कार का होना परमावश्यक है। यदि कविता में चमत्कार नहीं—कोई विलक्षणता नहीं—तो उससे आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। क्षेमेन्द्र की राय है—

"नहिं चमत्कारविरहितस्य कवेः कवित्वं
काव्यस्य वा काव्यत्वम्"।

यदि कवि में चमत्कार पैदा करने की शक्ति नहीं तो वह कवि नहीं। और यदि चमत्कार-पूर्ण नहीं तो काव्य का काव्यत्व भी नहीं। अर्थात् जिस गद्य या पद्य में चमत्कार नहीं वह काव्य या कविता की सीमा के भीतर नहीं आ सकता—

एकेन केनचिदनर्घमणिप्रभेण
काव्यं चमत्कृतिपदेन विना सुवर्णम।
निर्दोषलेशमपि रोहति कस्य चित्ते,
लावण्यहीनमिव यौवनमङ्गनानाम्॥

काव्य चाहे कैसा ही निर्दोष क्यों न हो, उसके सुवर्ण चाहे कैसे ही मनोहर क्यों न हों—यदि उसमें अनमोल रत्न के समान कोई चमत्कार पूर्ण पद न हुआ तो वह, स्त्रियों के लावण्य-हीन यौवन के समान, चित्त पर नहीं चढ़ता।

कविता में चमत्कार लाना लाना पिङ्गल पढ़ने और रस, ध्वनि तथा अलङ्कारादि के निरूपक ग्रन्थों के पारायण से सम्भव नहीं। उसके लिए प्रतिभा, साधन, अभ्यास, अवलोकन और मनन की जरूरत होती है। पिङ्गल आदि का पढ़ना एक बहुत ही गौण बात है।

'एक विरहिणी अशोक को देख कर कहती है—तुम खूब फूल रहे हो; लतायें तुम पर बेतरह छाई हुई हैं; कलियों के गुच्छे सब कहीं लटक रहे हैं, भ्रमर के समूह जहाँ तहाँ गुञ्जार कर रहे हैं। परन्तु मुझे तुम्हारा यह आडम्बर पसन्द नहीं। इसे हटाओ मेरा प्रियतम मेरे पास नहीं। अतएव मेरे प्राण कण्ठगत हो रहे हैं।

इस उक्ति में कोई विशेषता नहीं—इसमें कोई चमत्कार नहीं अतएव इसे काव्य की पदवी नहीं मिल सकती। अब एक चमत्कार-पूर्ण उक्ति सुनिये। कोई वियोगी रक्ताशोक को देखकर कहता है—नवीन पत्तों से तुम रक्त (लाल) हो रहे हो; प्रियतमा के प्रशंसनीय गुणों में मैं भी रक्त (अनुरक्त) हूँ। तुम पर शिलीमुख (भ्रमर) आ रहे हैं; मेरे ऊपर भी मनसिज के धनुष से छूटे हुए शिलीमुख (बाण) आ रहे हैं। कान्ता के चरणों का स्पर्श तुम्हारे आनन्द को बढ़ाता है; उसके स्पर्श से मुझे भी परमानन्द होता है। अतएव हमारी तुम्हारी दोनों की अवस्था में पूरी-पूरी समता है। भेद यदि कुछ है तो इतना ही कि तुम अशोक हो और मैं सशोक। इस उक्ति में सशोक शब्द रखने से विशेष चमत्कार आ गया। उसने 'अनमोल रत्न' का काम किया। यह चमत्कार किसी पिङ्गल-पाठ का प्रसाद नहीं और न किसी काव्याङ्ग-विवेचक ग्रन्थ के नियम-परिपालन ही का फल है।

उस दिन हम एक महायात्रा में कुछ लोगों के साथ गङ्गातट तक गये थे। यात्री की मृत्यु पञ्चक में हुई थी। शव चिता पर रक्खा गया। अग्नि संस्कार के समय एक लकड़ी खिसकी, इससे शव का सिर हिल गया। इस पर एक आदमी बोला—लकड़ी खिसकने से सिर हिल गया। यह सुनकर दूसरा बोल उठा—नहीं, नहीं, अमुक चाचा सिर हिलाकर मना कर रहे हैं कि

अग्नि संस्कार न करो ; हम धनिष्ठा पञ्चक मे मरे हैं। यह उक्ति यद्यपि एक ग्रामीण की है तथापि इसमें चमत्कार है। कवि को ऐसे ही चमत्कार लाने का उद्योग करना चाहिए।

क्षेमेन्द्र ने दस प्रकार के चमत्कार बतलाये हैं और सब के उदाहरण भी दिये है। पर प्रबन्ध बढ़ जाने के भय से हम उनका निदर्शन नही करते।

गुण-दोष-ज्ञान

काव्य के पाँच प्रकार हैं—सगुण, निर्गुण, सदोष, निर्दोष और गुण-दोष मिश्रित। गुण तीन प्रकार के हैं—शब्दवैमल्य अर्थवैमल्य और रसवैमल्य। दोष भी तीन प्रकार के हैं—शब्द-कालुष्य, अर्थकालुष्य, रसकालुष्य। इन सबके लक्षण इनके नाम ही से व्यक्त हैं। इसलिए उदाहरण नहीं दिये जाते।

'कालिदास की निरंकुशता' नाम के लेख में शब्द, अर्थ और रस-कालुष्य के कई उदाहरण दिये हैं। काव्य के गुण-दोषों के सम्बन्ध में और भी कितनी ही बातों का विचार उस लेख में किया गया है। उसे देखने से पाठकों को क्षेमेन्द्र का अभिप्राय समझने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। कवि को निर्दिष्ट दोषों से बचने का यत्न करना चाहिए। परन्तु बचेगा उनसे वही, जो उन्हें जानता होगा। अतएव कविता विषयक गुण-दोषों का ज्ञान प्राप्त करना भी कवि के लिए आवश्यक है।

परिचय-चारुता

कवि को सब शास्त्रों, सब विद्याओं और सब कलाओं आदि से परिचित होना चाहिए। क्षेमेन्द्र की आज्ञा है कि तर्क-व्याकरण, नाट्य-शास्त्र, काम शास्त्र, राज-नीति, महाभारत, रामायण, वेद, पुराण, आत्म-ज्ञान, धातुवाद, रत्न-परीक्षा, वैदिक, ज्योतिष, धनुर्वेद, गज तुरङ्ग, पुरुष परीक्षा इन्द्रजाल आदि सब विषयों का

ज्ञान कवि को सम्पादन करना चाहिए। कवियों को पद-पद पर इनसे काम पड़ता है। जो इनसे परिचय नहीं रखता वह बहुश्रुत नहीं हो सकता और विद्वानों की सभा में उसे आदर नहीं मिल सकता है। प्राचीन कवियों के काव्यों को देखने से यह साफ मालूम होता है कि वे लोग अनेक शास्त्रों के तत्त्व से अभिज्ञ थे। इसका परिचय उन्होंने जगह-जगह पर दिया है।

क्षेमेन्द्र जब ये सब बातें लिख चुके तब उन्हें शायद सन्देह हुआ कि उनके कथन को कोई असत्य या अतिशयोक्ति पूर्ण न समझे। अतएव उन्होंने पुस्तकान्त में लिखा है—

कृत्वा निश्चलदैवपौरुषमयोपायं प्रसूत्यै गिरां
क्षेमेन्द्रेण यदर्जितं शुभफलं तेनास्तु काव्यार्थिनाम्।
निर्विघ्नप्रतिभा प्रभावसुभगा वाणी प्रमाणीकृता।
सद्विवाग्भवमन्त्रपूतविततश्रोत्रामृतस्यन्दिनी॥

अर्थात् वाणी की उत्पत्ति के लिए मैंने दैव और पौरुषमय दोनों उपायों को किया है और उनसे शुभ फल की प्राप्ति भी मुझे हुई है। मेरी अब यह कामना है कि उस फल की प्रेरणा या प्रसाद से कवि होने की इच्छा रखने वालों को भी पवित्र कविता करना आ जाय। भगवान् करे, क्षेमेन्द्र की शुभ-कामना हमारे वर्तमान कवियों के विषय में भी फलवती हो। उनसे हमारी एक विनीत प्रार्थना है। वह यह कि यदि वे इस महा-कवि के दिये हुए कण्ठाभरण को कण्ठ में न धारण करें, तो उसे फेंक भी न दें और यदि यह कुछ उनसे न हो सके, तो यह निबन्ध लिख कर हमने जो अपराध किया है उसे उदारतापूर्वक क्षमा ही कर दें।

३—कवि और कविता

इस पुस्तक के आरम्भ मे 'कवि-कर्तव्य' नाम का एक लेख आ चुका है। उसमें यह दिखलाया गया है कि कविता को सरस मनोरञ्जक और हृदय ग्राहिणी बनाने के लिए कवि को किन-किन बातों का ख्याल रखना चाहिए। क्योंकि अच्छी कविता लिखना सबका काम नहीं। पर इस बात का विचार आज कल के कितने ही पद्य-रचना कर्त्ता बहुत कम करते है। उन्होंने कविता लिखना बहुत सहल काम समझ लिया है। वे शायद तुली हुई पंक्तियों को ही कविता समझते हैं। यह भ्रम है। कविता एक चीज है, तुली हुई शब्द-स्थापना दूसरी चीज।

उर्दू का साहित्य समूह हिन्दी से बढ़ा-चढ़ा है। इस बात को कबूल करना ही चाहिए। हिन्दी के हितैपियों को उचित है कि हिन्दी-साहित्य को उन्नत करके उसकी लाज रक्खे। उर्दू मे इस समय अनेक विषयों के कितने ही ऐसे-ऐसे ग्रन्थ विद्यमान हैं जिनका नाम तक हिन्दी में नहीं। उर्दू-लेखकों मे शम्स-उल-उलमा हाली, आजाद, जकाउल्ला, नजीर अहमद आदि की बराबरी करने वाला हिन्दी में शायद ही कोई हो। इन साहित्य-सेवियों ने उर्दू के ज्ञानागार को खूब समृद्धशाली कर दिया है। हिन्दी वालों को चाहिए कि वे इन लोगों की पुस्तकें पढ़े और

वैसी ही पुस्तकें हिन्दी में लिखने की कोशिश करें। इनमें से आज हमें हाली के विषय में कुछ कहना है।

शम्स-उल-उलमा मौलाना अल्ताफ़हुसैन हाली उर्दू के बहुत बड़े कवि हैं। आपने उर्दू में नई तरह की कविता की नींव डाली है। आपकी "मुसद्दस" नाम की कविता गजब की है। जिन्होंने इसे न पढ़ा हो, जरूर पढ़ें। आप देहली के पास, पानीपत के के रहने वाले हैं। देहली के प्रसिद्ध कवि (असदुल्लाखाँ गालिब) की कृपा से आपने कविता सीखी। पहिले आप लाहौर में मुलाजिम थे। वहाँ से देहली आये। अब आप शायद पानीपत में मकान ही पर रहते हैं[1]। बूढ़े हो गये हैं। आपने कई अच्छी-अच्छी पुस्तकें लिखी हैं। कविता में आपका बड़ा नाम है। आपने "मुकद्दमा" नाम का एक लेख लिखा है। यह लेख आपके "दीवान" के साथ छपा है। इस लेख में आपने कवि और कविता पर अपने विचार बड़ी योग्यता से प्रकट किये हैं। प्रायः उसी के आधार पर हम ये लेख लिखते हैं।

यह बात सिद्ध समझी गई है कि अच्छी कविता अभ्यास से नहीं आती। जिसमें कविता करने का स्वाभाविक माद्दा होता है वही कविता कर सकता है। देखा गया है कि जिस विषय पर बड़े-बड़े विद्वान् अच्छी कविता नहीं कर सकते उसी पर अपढ़ और कम उम्र के लड़के कभी-कभी अच्छी कविता लिख देते हैं। इससे स्पष्ट है कि किसी-किसी में कविता लिखने की इस्तेदाद स्वाभाविक होती है, ईश्वरदत्त होती है। जो चीज ईश्वरदत्त है वह अवश्य लाभदायक होगी। वह निरर्थक नहीं हो सकती। उससे समाज को कुछ-न-कुछ लाभ अवश्य पहुँचता है। अतएव

[1] खेद है, आपका देहान्त हो गया। १९१६।

यदि कोई यह समझता हो कि कविता करना व्यर्थ है तो यह उसकी भूल है। हाँ कविता के लक्षणों से च्युत, तुले हुये वर्णों या मात्राओं की पद्य मालिकाओं का प्राचुर्य है। इससे यदि कविता को कोई व्यर्थ समझे तो आश्चर्य नहीं।

कविता यदि यथार्थ में कविता है तो सम्भव नहीं कि उसे सुन कर सुनने वाले पर कुछ असर न हो। कविता से दुनियाँ में आज तक बहुत बड़े-बड़े काम हुये हैं। इस बात के प्रमाण मौजूद हैं। अच्छी कविता सुन कर कविता-गत रस के अनुसार दुःख, शोक, क्रोध, करुणा और जोश आदि भाव पैदा हुए बिना नहीं रहते। जैसा भाव मन में पैदा होता है, कार्य के रूप में फल भी वैसा ही होता है। हम लोगों में, पुराने जमाने में, भाट, चारण आदि अपनी-अपनी कविता ही की बदौलत वीरों में वीरता का सचार कर देते थे। पुराणादि में कारुणिक प्रसंगों का वर्णन सुनने और उत्तर-रामचरित आदि दृश्य-काव्यों का अभिनय देखने से जो अश्रुपात होने लगता है वह क्या है? वह अच्छी कविता ही का प्रभाव है। पुराने जमाने में ग्रीस के अथेन्स नगर वाले मेगारा वालों से वैरभाव रखते थे। एक टापू के लिये उनमें कई दफे लड़ाइयाँ हुईं। पर हर बार एथेन्स वालों ही की हार हुई। इस पर सोलन नाम के विद्वान् को बड़ा दुःख हुआ। उसने एक कविता लिखी। उसे उसने एक ऊँची जगह पर चढ़कर एथेन्स वालों को सुनाया। कविता का भावार्थ यह था—

"मैं एथेन्स में न पैदा होता तो अच्छा था। मैं किसी और देश में क्यों न पैदा हुआ? मुझे ऐसे देश में पैदा होना था जहाँ के निवासी मेरे देशवासियों से अधिक वीर, अधिक कठोर-हृदय और उनकी विद्या से बिलकुल बेखबर हों। मैं अपनी वर्तमान अवस्था की अपेक्षा उस अवस्था में अधिक प्रसन्न होता। यदि

मैं किसी ऐसे देश में पैदा होता तो लोग मुझे देख कर यह तो न कहते कि यह आदमी उसी एथेन्स का रहने वाला है जहाँ वाले मेगारा के निवासियों से लड़ाई में हार गये और लड़ाई के मैदान से भाग निकले। प्यारे देश बन्धु, अपने शत्रुओं से जल्द इसका बदला लो। अपने इस कलंक को फौरन धो डालो। अपने लज्जा-जनक पराजय के अपयश को दूर कर दो। जब तक अपने अन्यायी शत्रुओं के हाथ से अपना छिना हुआ देश न छुड़ालो तब तक एक मिनट भी चैन से न बैठो"। लोगों के दिल पर इस कविता का इतना असर हुआ कि फौरन मेगारा वालों पर फिर चढ़ाई करदी गई और जिस टापू के लिए यह बखेड़ा हुआ था उसे एथेन्स वालों ने लेकर ही चैन ली। इस चढ़ाई में सोलन ही सेनापति बनाया गया था।

रोम, इङ्गलैंड, अरब, फारस, आदि देशों में इस बात के सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं कि कवियों ने असम्भव बातें सम्भव कर दिखाई हैं। जहाँ पस्तहिम्मती का दौर-दौरा था वहाँ जोश पैदा कर दिया है। जहाँ शान्ति थी वहाँ गदर मचा दिया है। अतएव कविता एक साधारण चीज है। परन्तु विरले ही को सत्कवि होने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

जब तक ज्ञान-वृद्धि नहीं होती—जब तक सभ्यता का जमाना नहीं आता—तभी तक कविता की उन्नति होती है, क्योंकि सभ्यता और कविता में परस्पर विरोध है। सभ्यता और विद्या की वृद्धि होने से कविता का असर कम हो जाता है। कविता में कुछ न कुछ झूँठ का अंश जरूर रहता है। असभ्य अथवा अर्द्ध-सभ्य लोगों को यह अंश कम खटकता है, शिक्षित और सभ्य लोगों को बहुत। तुलसीदास की रामायण के खास-खास स्थलों का जितना प्रभाव स्त्रियों पर पड़ता है उतना पढ़े-लिखे आदमियों पर नहीं। पुराने काव्यों को पढ़ने से लोगों का

चित्त जितना पहले आकृष्ट होता था, उतना अब नहीं होता। हजारों वर्ष से कविता का क्रम जारी है। जिन प्राकृतिक बातों का वर्णन कवि करते हैं उनका वर्णन बहुत कुछ अब तक हो चुका। जो नये कवि होते हैं वे भी उलटफेर से प्रायः उन्हीं बातों का वर्णन करते हैं। इसी से अब कविता कम हृदय-ग्राहिणी होती है।

संसार में जो बात जैसी देख पड़े कवि को उसे वैसी ही वर्णन करना चाहिए। उसके लिए किसी तरह की रोक या पाबन्दी का होना अच्छा नहीं। दबाव से कवि का जोश दब जाता है। उसके मन में जो भाव आप ही आप पैदा होते हैं उन्हें जब वह निडर होकर अपनी कविता में प्रकट करता है तभी उसका असर लोगों पर पूरा-पूरा पड़ता है। बनावट से कविता बिगड़ जाती है। किसी राजा या किसी व्यक्ति-विशेष के गुण-दोषों को देख कर कवि के मन में जो भाव उद्भूत हों उन्हें यदि वह बेरोक-टोक प्रकट कर दे तो उसकी कविता हृदयद्रावक हुए बिना न रहे। परन्तु परतन्त्रता या पुरस्कार-प्राप्ति या और किसी कारण से, सच बात कहने में किसी तरह की रुकावट पैदा हो जाने से यदि उसे अपने मन की बात कहने का साहस नहीं होता तो कविता का रस जरूर कम हो जाता है। इस दशा में अच्छे कवियों की भी कविता नीरस, अतएव प्रभावहीन हो जाती है। सामाजिक और राजनैतिक विषयों में, कटु होने के कारण, सच कहना भी जहाँ मना है, वहाँ इन विषयों पर कविता करने वाले कवियों की उक्तियों का प्रभाव क्षीण हुए बिना नहीं रहता। कवि के लिए कोई रोक नहीं होनी चाहिए अथवा जिस विषय में रोक हो उस विषय पर कविता ही न लिखनी चाहिए। नदी, तालाब, वन, पर्वत, फूल, पत्ती, गरमी सरदी आदि ही के वर्णन से उसे सन्तोष करना उचित है।

खुशामद के जमाने में कविता की बुरी हालत होती है। जो कवि राजों, नवाबों या बादशाहों के आश्रय में रहते हैं, अथवा उनको खुश करने के इरादे से कविता करते हैं, उनको खुशामद करनी पड़ती है। वे अपने आश्रय-दाताओं की इतनी प्रशंसा करते हैं, इतनी स्तुति करते हैं कि उनकी उक्तियाँ असलियत से बहुत दूर जा पड़ती हैं। इससे कविता को बहुत हानि पहुँचती है। विशेष करके शिक्षित और सभ्य देशों में कवि का काम, प्रभावोत्पादक रीति से, यथार्थ घटनाओं का वर्णन करना है; आकाश-कुसुमों के गुलदस्ते तैयार करना नहीं। अलङ्कार-शास्त्र के आचार्यों ने अतिशयोक्ति एक अलङ्कार जरूर माना है। परन्तु अभावोक्तियाँ भी क्या कोई अलङ्कार है ? किसी कवि की बेसिर-पैर की बातें सुनकर किस समझदार आदमी को आनन्द की प्राप्ति हो सकती है ? जिस समाज के लोग अपनी झूँठी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होते हैं वह समाज कभी प्रशंसनीय नहीं समझा जाता। काबुल के अमीर हबीबुल्लाखाँ ने अपनी कविता-बद्ध निराधार प्रशंसा सुनने से, अभी कुछ ही दिन हुए, इनकार कर दिया। खुशामद-पसन्द आदमी कभी आदर की दृष्टि से नहीं देखे जाते।

कारण-वश अमीरों की झूँठी प्रशंसा करने, अथवा किसी एक ही विषय की कविता में कवि-समुदाय के आमरण लगे रहने से कविता की सीमा कट-छँट कर बहुत थोड़ी रह जाती है। इस तरह की कविता उर्दू में बहुत अधिक है। यदि यह कहें कि आशिकाना (शृङ्गारिक) कविता के सिवा और तरह की कविता उर्दू में है ही नहीं, तो बहुत बड़ी अत्युक्ति न होगी। किसी दीवान को उठाइये, किसी मसनवी को उठाइए, आशिक-माशूकों के रङ्गीन रहस्यों से आप उसे आरम्भ से अन्त तक रँगी हुई पाइएगा। इश्क भी यदि सच्चा हो तो कविता में कुछ असलियत

आ सकती है। पर क्या कोई कह सकता है कि आशिकाना शेर कहने वालों का सारा रोना, कराहना, ठंडी साँसें लेना, जीते ही अपनी क़ब्रों पर चिराग़ जलाना सब सच है? सब न सही, उनके प्रलापों का क्या थोड़ा सा भी अंश सच है? फिर इस तरह की कविता सैकड़ों वर्षों से होती आ रही है। अनेक कवि हो चुके, जिन्होंने इस विषय पर न मालूम क्या-क्या लिख डाला है। इस दशा में नये कवि अपनी कविता में नयापन कैसे ला सकते हैं? वही तुक, वही छन्द, वही शब्द, वही उपमा, वही रूपक! इस पर भी लोग पुरानी लकीर को बराबर पीटते जाते हैं। कवित्त, सवैये, घनाक्षरी, दोहे, सोरठे लिखने से बाज नहीं आते। नखशिख, नायिका भेद, अलङ्कार शास्त्र पर पुस्तकों पर पुस्तकें लिखते चले जाते हैं। अपनी व्यर्थ बनावटी बातों से देवी-देवताओं तक को बदनाम करने में नहीं सकुचाते। फल इसका यह हुआ कि कविता की असलियत काफ़ूर हो गई है। उसे सुनकर सुनने वाले के चित्त पर कुछ भी असर नहीं होता, उलटी कभी मन में घृणा का उद्रेक अवश्य उत्पन्न हो जाता है।

कविता के बिगड़ने और उसकी सीमा परिमित हो जाने से साहित्य पर भारी आघात होता है। वह बरबाद होजाती है। भाषा में दोष आ जाता है। जब कविता की प्रणाली बिगड़ जाती है, तब उसका असर सारे ग्रन्थकारों पर पड़ता है यही क्यों, सर्वसाधारण की बोल-चाल तक में कविता के दोष आ जाते हैं। जिन, शब्दों, जिन भावों, जिन उक्तियों का प्रयोग कवि करते हैं उन्हीं का प्रयोग और लोग भी करने लगते हैं। भाषा और बोलचाल के सम्बन्ध में कवि ही प्रमाण माने जाते हैं। कवियों ही के प्रयुक्त शब्दों और मुहावरों को कोशकार अपने कोशों में रखते हैं। मतलब यह है कि भाषा और बोल चाल क बनाना या बिगाड़ना प्रायः कवियों ही के हाथ में रहता है। जि

भाषा के कवि अपनी कविता में बुरे शब्द और बुरे भाव भरते रहते हैं, उस भाषा की उन्नति तो होती नहीं उलटी अवनति होती जाती है।

कविता-प्रणाली के बिगड़ जाने पर यदि कोई नये तरह की स्वाभाविक कविता करने लगता है तो लोग उसकी निन्दा करते हैं। कुछ नासमझ और नादान आदमी कहते हैं, यह बड़ी भद्दी कविता है। कुछ कहते हैं यह कविता ही नहीं। कुछ कहते हैं कि यह कविता तो "छन्दोदिवाकर" में दिये गये लक्षणों से च्युत है; अतएव यह निर्दोष नहीं। बात यह है कि जिसे अब तक कविता कहते आये हैं, वही उनकी समझ में कविता है और सब कोरी काँव-काँव! इसी तरह की नुकताचीनी से तङ्ग आकर अँग्रेजी के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ ने अपनी कविता को सम्बोधन करके उसकी सान्त्वना की है। वह कहता है "कविते! यह बेक़द्री का जमाना है। लोगों के चित्त को तेरी तरफ खींचना तो दूर रहा, उलटी सब कहीं तेरी निन्दा होती है। तेरी बदौलत सभा-समाजों और जलसों में मुझे लज्जित होना पड़ता है। पर जब मैं अकेला होता हूँ तब तुझ पर मैं घमण्ड करता हूँ। याद रख तेरी उत्पत्ति स्वाभाविक है। जो लोग अपने प्राकृतिक बल पर भरोसा रखते हैं, वे निर्धन होकर भी आनन्द से रह सकते हैं। पर अप्राकृतिक बल पर किया गया गर्व कुछ दिन बाद जरूर चूर्ण हो जाता है।"

गोल्डस्मिथ ने इस विषय में बहुत कुछ कहा है; पर हमने उसके कथन का सारांश बहुत ही थोड़े शब्दों में दे दिया है। इससे प्रकट है कि नई कविता-प्रणाली पर भृकुटी टेढ़ी करने वाले कवि-प्रकाण्डों के कहने की कुछ भी परवा न करके अपने स्वीकृत पथ से जरा भी

घबराना और उनके पक्षपातियों की निन्दा करना मनुष्य का स्वभाव ही-सा हो गया है। अतएव नई भाषा और नई कविता पर यदि कोई नुकताचीनी करे तो आश्चर्य नहीं।

आजकल लोगों ने कविता और पद्य को एक ही चीज समझ रक्खा है। यह भ्रम है। कविता और पद्य में वही भेद है जो अँग्रेजी की पोयट्री (Poetry) और वर्स (verse) में है। किसी प्रभावोत्पादक और मनोरञ्जक लेख, बात या वक्तृता का नाम कविता है और नियमानुसार तुली हुई सतरों का नाम पद्य है। जिस पद्य को पढ़ने या सुनने से चित्त पर असर नहीं होता, वह कविता नहीं। वह नपी-तुली शब्द स्थापना मात्र है। गद्य और पद्य दोनों में कविता हो सकती है। तुकबन्दी और अनुप्रास कविता के लिए अपरिहार्य्य नहीं। संस्कृत का प्रायः सारा पद्य समूह बिना तुकबन्दी का है और संस्कृत से बढ़कर कविता शायद ही किसी और भाषा में हो। अरब में भी सैकड़ों अच्छे-अच्छे कवि हो गये हैं। वहाँ भी शुरू-शुरू में तुकबन्दी का बिलकुल खयाल न था। अँग्रेजी में भी अनुप्रासहीन बेतुकी कविता होती है। हाँ, एक जरूरी बात है कि वजन और काफिये से कविता अधिक चित्ताकर्षक हो जाती है। पर कविता के लिए ये बातें ऐसी ही हैं जैसे शरीर के लिये वस्त्राभरण। यदि कविता का प्रधान धर्म, मनोरञ्जकता और प्रभावोत्पादकता उसमें न हो तो इनका होना निष्फल समझना चाहिए। पद्य के लिए काफिये वगैरह की जरूरत है, कविता के लिए नहीं। कविता के लिए तो ये बातें एक प्रकार से उलटी हानिकारक हैं। तुले हुए शब्दों में कविता करने और तुक, अनुप्रास आदि ढूँढ़ने से कवियों के विचार-स्वातन्त्र्य में बड़ी बाधा आती है। पद्य के नियम कवि के लिए एक प्रकार की बेड़ियाँ हैं। उनसे जकड़ जाने से कवियों को अपने स्वाभाविक उड़ान में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता

है। कवि का काम है कि वह अपने मनोभावों को स्वाधीनता पूर्वक प्रकट करे। पर काफिया और वजन उसकी स्वाधीनता में विघ्न डालते हैं। वे उसे अपने भावों को स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं प्रकट होने देते। काफिये और वजन को पहले ढूँढकर कवि को अपने मनोभाव तदनुकूल गढ़ने पड़ते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि प्रधान बात अप्रधानता को प्राप्त हो जाती है और एक बहुत ही गौण बात प्रधानता के आसन पर जा बैठती है। इससे कवि अपने भाव स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं प्रगट कर सकता। फल यह होता है कि कवि की कविता का असर कम हो जाता है। कभी-कभी तो वह बिल्कुल ही जाता रहता है। अब आप ही कहिये कि जो वजन और काफिया कविता के लक्षण का कोई अंश नहीं उन्हें ही प्रधानता देना भारी भूल है या नहीं?

जो बात एक असाधारण और निराले ढङ्ग से शब्दों के द्वारा इस तरह प्रकट की जाय कि सुनने वाले पर उसका कुछ-न-कुछ असर जरूर पड़े, उसी का नाम कविता है। आज-कल हिन्दी में जो सज्जन पद्य-रचना करते हैं और उसे कविता समझ कर छपाने दौड़ते हैं उनको यह बात जरूर याद रखनी चाहिए। इन पद्य-रचयिताओं में कुछ ऐसे भी हैं जो अपने पद्यों को कालिदास, होमर और बाइरन की कविता से बढ़कर समझते हैं। यदि कोई सम्पादक उन्हें प्रकाशित करने से इनकार करता है तो वे अपना अपमान समझते हैं और बेचारे सम्पादक के खिलाफ नाटक, प्रहसन और व्यङ्ग-पूर्ण लेख प्रकाशित करके अपने जी की जलन शान्त करते हैं। वे इस बात को बिल्कुल ही भूल जाते हैं कि यदि उनकी पद्य-रचना अच्छी हो तो कौन ऐसा मूर्ख होगा जो उसे अपने पत्र या पुस्तक में सहर्ष और सधन्यवाद न प्रकाशित करेगा?

कवि का सबसे बड़ा गुण नई-नई बातों का सूझना है।

इसके लिये कल्पना (Imagination) की बड़ी जरूरत है। जिस में जितनी ही अधिक यह शक्ति होगी वह उतनी ही अधिक अच्छी कविता लिख सकेगा। कविता के लिए उपज चाहिये। नये-नये भावों की उपज जिसके हृदय में नहीं वह कभी अच्छी कविता नहीं लिख सकता। ये बातें प्रतिभा की बदौलत होती हैं। इसीलिये संस्कृत वालों ने प्रतिभा को प्रधानता दी है। प्रतिभा ईश्वरदत्त होती है। अभ्यास से वह नहीं प्राप्त होती। इस शक्ति को कवि माँ के पेट से लेकर पैदा होता है। इसी की बदौलत वह भूत और भविष्यत को हस्तामलकवत् देखता है, वर्तमान की तो कोई बात ही नहीं। इसी की कृपा से वह सांसारिक बातों को एक अजीब निराले ढङ्ग में बयान करता है जिसे सुनकर सुनने वाले के हृदयोदधि में नाना प्रकार के सुख, दुख, आश्चर्य आदि विकारों की लहरें उठने लगती हैं। कवि कभी-कभी ऐसी अद्भुत बातें कह देते हैं कि जो कवि नहीं हैं उनकी पहुँच वहाँ तक कभी हो ही नहीं सकती।

कवि का काम है कि वह प्रकृति-विकास को खूब ध्यान से देखे। प्रकृति की लीला का कोई ओर-छोर नहीं। वह अनन्त है। प्रकृति अद्भुत-अद्भुत खेल खेला करती है। एक छोटे से फूल में वह अजीब-अजीब कौशल दिखाती है। वे साधारण आदमियों के ध्यान में नहीं आते। वे उनको समझ नहीं सकते। पर कवि अपनी सूक्ष्म दृष्टि से प्रकृति के कौशल अच्छी तरह देख लेता है; उनका वर्णन भी करता है? उनसे नाना प्रकार की शिक्षा भी ग्रहण करता है; और अपनी कविता के द्वारा संसार को लाभ भी पहुँचाता है। जिस कवि में प्राकृतिक दृश्य और प्रकृति के कौशल देखने और समझने का जितना ही अधिक ज्ञान होता है वह उतना ही बड़ा कवि भी होता है।

प्रकृति-पर्यालोचन के सिवा कवि को मानव स्वभाव की

आलोचना का भी अभ्यास करना चाहिये। मनुष्य अपने जीवन में अनेक प्रकार के सुख, दुःख आदि का अनुभव करता है। उसकी दशा कभी एक-सी नहीं रहती अनेक प्रकार के विकार-तरङ्ग उसके मन में उठा ही करते हैं। इन विकारों की जाँच, ज्ञान और अनुभव करना सबका काम नहीं। केवल कवि ही इनके अनुभव करने और कविता द्वारा औरों को इनका अनुभव कराने में समर्थ होता है। जिसे कभी पुत्र-शोक नहीं हुआ उसे उस शोक का यथार्थ ज्ञान होना सम्भव नहीं। पर यदि वह कवि है तो वह पुत्र-शोकाकुल माता या पिता की आत्मा में प्रवेश-सा करके उसका अनुभव कर लेता है। उस अनुभव का वह इस तरह वर्णन करता है कि सुनने वाला तन्मनस्क होकर उस दुःख से अभिभूत हो जाता है। उसे ऐसा मालूम होने लगता है कि स्वयं उसी पर वह दुःख पड़ रहा है जिस कवि को मनोविकारों और प्राकृतिक बातों का यथेष्ट ज्ञान नहीं वह कदापि अच्छा कवि नहीं हो सकता।

हाली के मुकद्दमे को पढ़ कर हमारे एक मित्र महाशय ने कुछ अलङ्कार शास्त्र के आचार्यों की राय लिखी है और संक्षेपतया यह दिखलाया है कि हमारे अलङ्कारिकों ने कविता के लिए किन-किन बातों की जरूरत समझी है। आपके कथन का आशय हम नीचे देते हैं। पाठक देखेंगे कि हाली की राय संस्कृत साहित्य के आचार्यों से बहुत कुछ मिलती है। सुनिए—

नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतञ्च बहुनिर्मलम्।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः॥

(आचार्य दण्डी—काव्यादर्श)

अर्थात् स्वाभाविकी प्रतिभा अर्थात् (१); शक्ति शब्द-शास्त्रादि तथा लोकाचारादि का विशुद्ध ज्ञान (२) और प्रगाढ़ अभ्यास (३) यह सब मिलकर काव्य-रूप सम्पत्ति का कारण

है—"श्रुत" शब्द के अर्थ पण्डित जीवानन्द विद्यासागर ने ये किए है—"श्रुतं" शास्त्रज्ञानं लोकाचारादिज्ञानञ्च" सृष्टि कार्य और मानव-स्वभाव इन दोनो के ज्ञान का बोध लोकाचारादि ज्ञान है। उसका उल्लेख हाली ने अपनी दूसरी और तीसरी शर्त 'सृष्टिकार्य पर्यालोचना' और 'शब्दविन्यास चातुर्य' मे किया है। प्रगाढ़ अभ्यास की आवश्यकता हाली ने "आमद और आवुर्द मे फर्क"—इस विषय पर बहस करते हुए सिद्ध की है।

इसी अभिप्राय का एक श्लोक यह भी है—

शक्तिर्निपुणता:लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥

अर्थात् प्रतिभाशक्ति, काव्यादि शास्त्र तथा लोकाचारादि के अवलोकन से प्राप्त हुई निपुणता और काव्यों की शिक्षा के अनुसार अभ्यास, ये तीनों बाते कविता के उद्भव मे हेतु हैं। आचार्यों ने प्रतिभा ही को काव्य का कारण मानकर व्युत्पत्ति को उसकी सुन्दरता और अभ्यास को वृद्धि का हेतु माना है यथा—

कवित्वं जायते शक्तेर्वर्द्धतेऽभ्यासयोगतः ।
तस्य चारुत्वनिष्पत्तौ व्युत्पत्तिस्तु गरीयसी ॥

इस मत की पुष्टि भी हाली के उस लेख से होती है जो उन्होने सब से पहली शर्त "तखय्युल" (प्रतिभा) पर लिखा है।

इन्ही सब बातों को हाली ने अपने मुकद्दमे, २७ से ५४ पृष्ठ तक उदाहरणादिकों से पल्लवित किया है।

सृष्टि-कार्य-निरीक्षण की आवश्यकता कवि को क्यों है ? इस बात को हाली ने 'मसनवी' पर बहस करते हुए, एक उदाहरण द्वारा समझाया है, वे लिखते हैं—

"इसी प्रकार किस्से मे ऐसी छोटी-छोटी प्रासङ्गिक बातो का बयान करना, जिन्हे तजरबा और मुशाहिदा झुठलाते हों,

कदापि उचित नहीं। इससे आख्यायिकाकार का इतना बेसलीका-पन साबित नहीं होता, जितनी उसकी अज्ञता और लोक-वृत्तांत से अनभिज्ञता, या जरूरी अनुभव प्राप्त करने से बेपरवाई साबित होती हैं। जैसा कि "वद्रे मुनीर" में एक खास मौके पर वक्त का समाँ इस तरह बयान किया है—

वो गाने का आलम वो हुस्ने बुताँ,
वो गुलशन की खूबी वो दिन का समाँ।
दरख्तों की कुछ छाँव और कुछ वो धूप,
वो धानों की सब्जी वो सरसों का रूप॥

अखीर मिसरे से साफ प्रतीत होता है कि एक तरफ धान खड़े थे और एक तरफ सरसों फूल रही थी। मगर यह बात वाकै के खिलाफ है, क्योंकि धान खरीफ में होते हैं और सरसों रबी में गेहुँओं के साथ बोई जाती है।

कवि-कुल-गुरु कालिदास के विश्व-विख्यात काव्य, तथा कविवर बिहारीलाल की सतसई से इसी विषय का, एक-एक प्रत्युदाहरण सुनिए—

इक्षुच्छायनिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः॥

—रघुवंश

रघु की दिग्विजयार्थ यात्रा के उपोद्घात में शरदृतु का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि ईख की छाया में बैठी हुई धान रखाने वाली स्त्रियाँ रघु का यश गाती थीं। शरद्-काल में जब धान के खेत पकते हैं तब ईख इतनी-इतनी बड़ी हो जाती है कि उसकी छाया में बैठ कर खेत रखा सकें। ईख और धान के खेत भी प्रायः पास ही पास हुआ करते हैं। कवि को ये सब बातें विदित थीं। श्लोक में इस दशा का—इस वास्तविक घटना का—

चित्र-सा खींच दिया गया है। श्लोक पढ़ते ही वह समाँ आँखों मे फिरने लगता है।

महाराजाधिराज विक्रमादित्य के सखा, राजसी ठाठ से रहने वाले कालिदास ने गरीब किसानो की, नगर से दूर, जङ्गल से सम्बन्ध रखने वाली एक वास्तविक घटना का कैसा मनोहर चित्र उतारा है। यह उनके प्रकृति-पर्यालोचक होने का दृढ़ प्रमाण है। दूसरा प्रत्युदाहरण—

सन सूख्यौ बीत्यौ बनौ, ऊखौ लई उखारि।
हरी-हरी अरहर अजौं, धर धर हर हिय नारि॥

—सतसई

पहले सन सूखता है, फिर बनबाड़ी या कपास के खेत की बहार खतम होती है। पुनः ईख के उखड़ने की बारी आती है। और इन सबसे पीछे गेहुँओं के साथ तक, अरहर हरी-भरी खड़ी रहती है।

ये सब बातें कवि ने कैसे सुन्दर और सरल ढङ्ग से क्रम पूर्वक इस दोहे में बयान की हैं। इसमें अनुप्रास की छटा आदि अन्य काव्य-गुणों पर ध्यान दिलाने का यह अवसर नहीं। यहां तक पूर्वोक्त महाशय की राय हुई।

कविता को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उचित शब्द स्थापना की भी बड़ी जरूरत है। किसी मनोविकार के दृश्य के वर्णन में ढूँढ़-ढूँढ़ कर ऐसे शब्द रखने चाहिए जो सुनने वाले की आँखों के सामने वर्ण्य-विषय का चित्र-सा खींच दें। मनोभाव चाहे कैसा ही अच्छा क्यों न हो, यदि वह तदनुकूल शब्दों मे न प्रकट किया गया तो उसका असर यदि जाता नहीं रहता तो कम जरूर हो जाता है। इसीलिए कवि को चुन-चुन कर ऐसे शब्द रखने चाहिए, और इस क्रम से रखने चाहिए जिससे

उसके मन का भाव पूरे तौर पर व्यक्त हो जाय। उसमें कसर न पड़े। मनोभाव शब्दों ही के द्वारा व्यक्त होता है। अतएव युक्ति-सङ्गत शब्द-स्थापना के बिना कवि की कविता तादृश हृदय-हारिणी नहीं हो सकती। जो कवि अच्छी शब्द-स्थापना करना नहीं जानता, अथवा यों कहिए कि जिसके पास काफी शब्द-समूह नहीं है, उसे कविता करने का परिश्रम ही न करना चाहिए जो सुकवि हैं उन्हें एक-एक शब्द की योग्यता ज्ञात रहती है। वे खूब जानते हैं कि किस शब्द में क्या प्रभाव है। अतएव जिस शब्द में उनका भाव प्रकट करने की एक बाल भर भी कमी होती है उसका वे कभी प्रयोग नहीं करते। आजकल के पद्य- रचना-कर्त्ता महाशयों को इस बात का बहुत कम ख्याल रहता है। इसीसे उनकी कविता, यदि अच्छे भाव से भरी हुई हो तो भी, बहुत कम असर पैदा करती है। जो कवि प्रति पंक्ति में, निरर्थक 'सु', 'जु' और 'रु' का प्रयोग करता है वह मानो इस बात का खुद ही सार्टीफिकेट दे रहा है कि मेरे अधिकृत शब्द-कोश में शब्दों की कमी है। ऐसे कवियों की कविता कदापि सर्व सम्मत और प्रभावोत्पादक नहीं हो सकती।

अँगरेजी के प्रसिद्ध कवि मिल्टन ने कविता के तीन गुण वर्णन किये हैं। उनकी राय है कि कविता सादी हो, जोश से भरी हुई हो, और असलियत से गिरी हुई न हो।

सादगी से यह मतलब नहीं कि सिर्फ शब्द-समूह ही सादा हो, किन्तु विचार-परम्परा भी सादी हो। भाव और विचार ऐसे सूक्ष्म और छिपे हुए न हों कि उनका मतलब समझ में न आवे, या देर से समझ में आवे। यदि कविता में कोई ध्वनि हो तो इतनी दूर की न हो जो उसे समझने में गहरे विचार की जरूरत हो। कविता पढ़ने या सुनने वाले को ऐसी साफ-सुथरी सड़क मिलनी चाहिये जिस पर कङ्कड़, पत्थर, टीले, खन्दक,

काँटे और झाड़ियों का नाम न हो। वह खूब साफ और हमवार हो, जिससे उस पर चलने वाला आराम से चला जाय जिस तरह सड़क ज़रा भी ऊँची-नीची होने से बाइसिकल (पैरगाड़ी) के सवार को धचके लगते हैं उसी तरह कविता की सड़क यदि थोड़ी भी नाहमवार हुई तो पढ़ने वाले के हृदय पर धक्का लगे बिना नहीं रहता। कविता-रूपी सड़क के इधर-उधर स्वच्छ पानी के नदी-नाले बहते हों; दोनों तरफ फलों-फूलों से लदे हुए पेड़ हों, जगह-जगह पर विश्राम करने योग्य स्थान बने हों, प्राकृतिक दृश्यों की नई-नई झाँकियाँ आँखों को लुभाती हों। दुनियाँ में आज तक जितने अच्छे-अच्छे कवि हुये हैं उनकी कविता ऐसी ही देखी गयी है। अटपटे भाव और अटपटे शब्द-प्रयोग करने वाले कवियों की कभी कद्र नहीं हुई। यदि कभी किसी की कुछ हुई भी है तो थोड़े ही दिनों तक। ऐसे कवि विस्मृति के अन्धकार में ऐसे छिप गये हैं कि इस समय उनका कोई नाम तक नहीं जानता। एक मात्र सूनी शब्द-झङ्कार ही जिन कवियों की करामात है उन्हें चाहिए कि वे एक दम ही बोलना बन्द करदें।

भाव चाहे कैसा ही ऊँचा क्यों न हो, पेचीदा न होना चाहिए वह ऐसे शब्दों के द्वारा प्रकट किया जाना चाहिये जिनसे सब लोग परिचित हों। मतलब यह कि भाषा बोल-चाल की हो। क्योंकि कविता की भाषा बोल-चाल से जितनी ही अधिक दूर जा पड़ती है उतनी ही उसकी सादगी कम हो जाती है। बोल-चाल से मतलब उस भाषा से है जिसे खास और आम सब बोलते हैं, विद्वान् और अविद्वान् दोनों जिसे काम में लाते हैं। इसी तरह कवि को मुहाविरे का भी खयाल रखना चाहिए। जो मुहाविरे सर्व-सम्मत हैं उन्हीं का प्रयोग करना चाहिए। हिन्दी और उर्दू में कुछ शब्द अन्य भाषाओं के भी आ गये हैं।

वे यदि बोल-चाल के हैं तो उनका प्रयोग सदोष नहीं माना जा सकता। उन्हें त्याज्य नहीं समझना चाहिए। कोई-कोई ऐसे शब्दों को उनके मूल-रूप में लिखना ही सही समझते हैं। पर यह उनकी भूल है। जब अन्य भाषा का कोई शब्द किसी और भाषा में आ जाता है तब वह उसी भाषा का हो जाता है। अतएव उसे उसकी मूल भाषा के रूप में लिखते जाना भाषा विज्ञान के नियमों के खिलाफ है। खुद 'मुहावरा' शब्द ही को देखिए। जब उसे अनेक लोग हिन्दी में 'मुहावरा' लिखने और बोलने लगे तब उसका असली रूप जाता रहा। वह हिन्दी का शब्द हो गया। यदि अन्य भाषाओं के बहु-प्रयुक्त शब्दों का मूल रूप ही शुद्ध माना जायगा तो घर, घड़ा, हाथ, पाँव, नाक और गश, मुसलमान, कुरान, मैगजीन, एडमिरल, लालटेन आदि शब्दों को भी उसके पूर्व में ले जाना पड़ेगा। एशियाटिक सोसाइटी के जनवरी १९०७ के जर्नल में फ्रेंच और अँगरेजी आदि यूरोपियन भाषाओं के १३८ शब्द ऐसे दिये गये हैं जो फारस के फारसी अखबारों में प्रयुक्त हैं। इनमें कितने ही शब्दों का रूपान्तर हो गया है। अब यदि इस तरह के शब्द अपने मूल रूप में लिखे जायेंगे तो भाषा में इस तरह गड़बड़ पैदा हो जायगी।

असलियत से मतलब यह नहीं कि कविता एक प्रकार का इतिहास समझा जाय और हर बात में सचाई का ख्याल रक्खा जाय। यह नहीं कि सचाई की कसौटी पर कसने पर यदि कुछ भी कसर मालूम हो तो कविता का कवितापन जाता रहे। असलियत से सिर्फ इतना ही मतलब है कि कविता बेबुनियाद न हो उसमें जो उक्ति हो वह मानवी मनोविकारों और प्राकृतिक नियम के आधार पर कही गई हो, स्वाभाविकता से उसका लगाव न छूटा हो। कवि यदि अपनी या और किसी की तारीफ

करने लगे और यदि वह उसे सचमुच ही सच समझे, अर्थात् यदि उसकी भावना वैसी ही हो, तो वह भी असलियत से खाली नहीं, फिर चाहे और लोग उसे उलटा ही क्यों न समझते हों। परन्तु इन बातों में भी स्वाभाविकता से दूर न जाना चाहिए। क्योंकि स्वाभाविक अर्थात् 'नेचुरल' (Natural) उक्तियाँ ही सुनने वाले के हृदय पर असर कर सकती हैं, अस्वाभाविक नहीं। असलियत को लिए हुए कवि स्वतन्त्रता-पूर्वक जो चाहे कह सकता है; असल बात को एक नए साँचे में ढाल कर कुछ दूर तक इधर-उधर भी उड़ान कर सकता है; पर असलियत के लगाव को वह नहीं छोड़ता। असलियत को हाथ से जाने देना मानो कविता को प्राय: निर्जीव कर डालना है। शब्द और अर्थ दोनों ही के सम्बन्ध में उसे स्वाभाविकता का अनुधावन करना चाहिए। जिस बात के कहने में लोग स्वाभाविक रीति पर जैसे और जिस क्रम से शब्द-प्रयोग करते हैं वैसे ही कवि को भी करना चाहिए। कविता में उसे कोई बात ऐसी न कहनी चाहिए जो दुनियाँ में न होती हो। जो बातें हमेशा हुआ करती हैं, अथवा जिन बातों का होना सम्भव है, वही स्वाभाविक हैं। अर्थ की स्वाभाविकता से मतलब ऐसी ही बातों से है। हम इन बातों को उदाहरण देकर अधिक स्पष्ट कर देते, पर लेख बढ़ जाने के डर से ऐसा नहीं करते।

जोश से यह मतलब है कि कवि जो कुछ कहे इस तरह कहे मानो उसके प्रयुक्त शब्द आप ही आप उसके मुँह से निकल गये हैं। उनसे बनावट न जाहिर हो। यह न मालूम हो कि कवि ने कोशिश करके ये बातें कही हैं; किन्तु यह मालूम हो कि उसके हृदगत भावों ने कविता के रूप में अपने को प्रकट कराने के लिए उसे विवश किया है। जो कवि है उसमें जोश स्वाभाविक होता है। वर्ण्य वस्तु को देख कर, किसी अदृश्य शक्ति की प्रेरणा

से, वह उस पर कविता करने के लिए विवश सा हो जाता है। उसमें एक अलौकिक शक्ति पैदा हो जाती है। इसी शक्ति के बल से वह सजीव ही नहीं, निर्जीव चीजों तक का वर्णन ऐसे प्रभावोत्पादक ढङ्ग से करता है कि यदि उन चीजों में बोलने की शक्ति होती तो खुद वे भी इससे अच्छा वर्णन न कर सकतीं। जोश से यह भी मतलब नहीं कि कविता के शब्द खूब जोरदार और जोशीले हों। सम्भव है, शब्द जोरदार न हों; पर जोश उनमें छिपा हुआ हो धीमे शब्दों में भी जोश रह सकता है और पढ़ने या सुनने वाले के हृदय पर चोट कर सकता है। परन्तु ऐसे शब्दों का प्रयोग करना ऐसे वैसे कवि का काम नहीं। जो लोग मोटी छुरी से तेज तलवार का काम लेना चाहते हैं वही धीमे शब्दों में जोश भर सकते हैं।

सादगी, असलियत और जोश यदि ये तीनों गुण कविता में हों तो कहना ही क्या है। परन्तु बहुधा अच्छी कविता में भी इनमें से एक आध गुण की कमी पाई जाती है। कभी-कभी देखा जाता है कि कविता में केवल जोश रहता है, सादगी और असलियत नहीं। कभी-कभी सादगी और जोश पाये जाते हैं। असलियत नहीं। परन्तु बिना असलियत के जोश का होना बहुत कठिन है। अतएव कवि को असलियत का सबसे अधिक ध्यान रखना चाहिए।

अच्छी कविता की सबसे बड़ी परीक्षा यह है कि उसे सुनते ही लोग बोल उठें कि सच कहा। वही कवि सच्चे कवि हैं जिनकी कविता सुन कर लोगों के मुँह से सहसा यह उक्ति निकलती है। ऐसे कवि धन्य हैं; और जिस देश में ऐसे कवि पैदा होते हैं वह देश भी धन्य है। ऐसे कवियों की कविता चिरकाल तक जीवित रहती है।

४—कविता

बम्बई मे मराठी भाषा में, बालबोध नामक एक छोटी-सी मासिक पुस्तक निकलती है। उसकी बाइसवीं जिल्द के पाँचवें अङ्क में कविता-विषयक एक बहुत ही सरस और हृदयङ्गम लेख निकला है। उसका भावार्थ हम यहाँ पर देते हैं।

हँसना, रोना, क्रोध करना और विस्मित होना आदि व्यापार मनुष्यों मे आप ही आप उत्पन्न होते हैं। उन व्यापारों के लिए जो सामग्री दरकार होती है उस सामग्री के यथा समय प्राप्त होते ही वे व्यापार आप ही आप आविर्भूत हो जाते हैं। इसके लिए और कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। कविता का भी प्रकार ऐसा [illegible]

हैं, अर्थात् मनोभाव शब्दों का स्वरूप धारण करते हैं, वही कविता है। चाहे वह पद्यात्मक हो, चाहे गद्यात्मक। शब्दात्मक मनोभाव अपनी शक्ति के अनुसार सुनने वाले पर अपना प्रभाव जमाते हैं। कथा, पुराण अथवा संकीर्तन आदि के समय भक्ति-भाव-पूर्ण पदों को सुनकर कोई-कोई प्रेमी आनन्द से लीन हो जाते हैं। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है; यहाँ तक कि वे अपने को भूल जाते हैं। परन्तु वहीं पर, उनके पास ही बैठे हुए कोई महात्मा, निकटस्थ नटखट लड़कों की शरारत

देख कर हँसते रहते हैं; किंवा ऊँघा करते हैं। इसका यह कारण है कि उन पदों में भरे हुए भक्तिरस को स्वीकार अथवा उपभोग करने की सामर्थ उनमें नहीं होती। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। खून के समान भारी घटनायें जिस जगह हो जाती हैं, उस जगह सब समझस मनुष्य घबरा उठते हैं; परन्तु तीन-चार वर्ष के छोटे-छोटे लड़के वहीं आनन्द से खेला करते हैं। उन पर उस घटना का कुछ भी असर नहीं होता। अज्ञानता के कारण खून के समान भयानक घटनाओं की भयङ्करता का विचार ही जब उन लड़कों के मन में नहीं आता तब उनको उस विषय में भय कैसे मालूम हो सकता है।

कवियों का यह काम है कि वे जिस पात्र अथवा जिस वस्तु का वर्णन करते हैं, उसका रस अपने अन्तःकरण में लेकर उसे ऐसा शब्द-स्वरूप दे देते हैं कि उन शब्दों को सुनने से वह रस सुनने वालों के हृदय में जागृत हो उठता है। ऐसा होना बहुत कठिन है। सच तो यह है कि काव्य-रचना में सबसे बड़ी कठिनता जो है वह यही है। रामचन्द्र और सीता को हुए कई युग हुए। तुलसीदास को भी आज कई सौ वर्ष हुए। परन्तु उनके काव्य में किसी-किसी स्थान पर इतना रस भरा हुआ है कि उस रस के प्रवाह में पड़ कर बहे बिना सहृदय मनुष्य कदापि नहीं बच सकते। रामचन्द्र के वन-गमन-समय सीता कहती है—

प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिनु रघुकुल-कुमुद-विधु, सुरपुर, नरक-समान॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई।
प्रिय परिवार सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुरु सजन सहाई।
सुठि सुन्दर सुशील सुखदाई॥

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते।
पिय-बिनु तियहि तरणि ते ताते॥
तनु धन धाम धरणि पुर राजू।
पति-विहीन सब शोक समाजू॥
भोग रोग सम भूषण भारू।
यम-यातना सरिस संसारू॥
प्राणनाथ तुम बिनु जग माहीं।
मो कहँ सुखद कबहुँ कोउ नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु वारी।
तैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे।
शरद-विमल विधु-बदन-निहारे॥

खग मृग परिजन नगर बन, वलकल बसन दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम, पर्णशाल सुखमूल॥

वनदेवी वनदेव उदारा।
करिहैं सासु ससुर सम सारा॥
कुश-किसलय[1] साथरी सुहाई।
प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई॥
कन्द-मूल फल अमिय अहारू।
अवध सहस सुख सरिस पहारू॥
क्षण-क्षण प्रभु-पद-कमल विलोकी।
रहिहौं मुदित-दिवस जिमि कोकी॥
वन दुख नाथ कहेउ बहुतेरे।
भय विषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु-वियोग लवलेश समाना।
सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥

अस जिय जान सुजान-शिरोमनि ।
लेइय संग मोहि छांड़िय जनि ॥
विनती वहुत करौं का स्वामी ।
करुणामय उर अन्तरयामी ॥
राखिय अवध जो अवधि लगि, रहित जानिये प्रान ।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, शील-सनेह-निधान ॥
मोहि मग चलत न होइहि हारी ।
क्षण-क्षण चरण-सरोज निहारी ॥
सबहिं भाँति प्रिय-सेवा करिहौं ।
मारग-जनित सकल श्रम हरिहौं ॥
पाँव पखारि बैठि तरु छाँहीं ।
करिहौं वायु मुदित मन माहीं ॥
श्रमकण-सहित श्याम तनु देखे ।
का दुख समय प्राणपति लेखे ॥
तुम महि तृण-तरु-पल्लव डासी ।
सम महि तृण-तरु-पल्लव दासी ॥
वार वार मृदु मूरति जोही ।
लागिहि ताति बयारि न मोही ॥
को प्रभु सँग मोहि चितवनि हारा ।
सिंह वधुहि जिमि शशक सियारा ॥
मैं सुकुमारि नाथ वन-योगू ।
तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू ॥
ऐसेहु वचन कठोर सुनि, जो न हृदय विलगान ।
तौ प्रभु विषम वियोग दुख, सहिहैं पामर प्रान ॥
अस कहि सीय विकल भई भारी ।
वचन वियोग न सकी सँभारी ॥

यह पढ़ते अथवा सुनते समय सुनने वाले के हृदय में सीता की धर्मनिष्ठा और पतिपरायणता-विषयक भाव थोड़ा-बहुत उद्दीपन या जाग्रत हुए बिना कभी नहीं रह सकता।

एक और उदाहरण लीजिए। पण्डित श्रीधर पाठक द्वारा अनुवादित "एकान्तवासी योगी" में वियोगिनी पथिक-वेश धारिणी अञ्जलेना अपने प्रियतम एडविन से उसी के विषय में इस प्रकार कहती है—

पहुँचा उसे खेद इससे अति, हुआ दुखित अत्यन्त उदास,
तज दी अपने मन से उसने, मेरे मिलने की सब आस।
मैं यह दशा देखने पर भी, ऐसी हुई कठोर,
करने लगी अधिक रूखापन, दिन दिन उसकी ओर॥
होकर निपट निराश अन्त को, चला गया वह बेचारा;
अपने उस अनुचित घमंड का, फल मैंने पाया सारा।
एकान्ती में जाकर उसने तोड़ जगत से नेह;
धोकर हाथ प्रीति मेरी से, त्याग दिया निज देह॥
किन्तु प्रेमनिधि, प्राणनाथ को भूल नहीं मैं जाऊँगी,
प्राणदान के द्वारा उसका, ऋण मैं आप चुकाऊँगी।
उस एकान्त ठौर को मैं, अब ढूँढ़ूँ हूँ दिन रैन;
दुख की आग बुझाय जहाँ पर दूँ इस मन को चैन॥
जाकर वहाँ जगत को मैं भी, उसी भाँति विसराऊँगी,
देह गेह को देय तिलाञ्जलि, प्रिय से प्रीति निभाऊँगी।
मेरे लिये एडविन ने ज्यों, किया प्रीति का नेम,
त्योंही मैं भी शीघ्र करूँगी, परिचित अपना प्रेम।

इसमें अञ्जलेना के पवित्र प्रेम और उसकी भूल के पश्चाताप सम्बन्धी रस को कवि ने अपने हृदय में लेकर शब्दों के द्वारा बाहर बहाया है। वह रस-प्रभाव सुनने वालों के अन्तःकरण में प्रवेश करके उपरति उत्पन्न करता है, जिसके कारण हृदय-

गद्‌गद्‌ हो उठता है और किसी-किसी के आँसू तक निकलने लगते हैं। इसका नाम कविता-शक्ति है। ऐसी ही उक्तियों को कविता कहते हैं।

एक तत्वज्ञानी ने तो यहाँ तक कहा है कि रस-परिपक्वता ही कविता है। उसे मुख से कहने की आवश्यकता नहीं और काग़ज़ पर लिखने की आवश्यकता नहीं। यदि नट रङ्ग-भूमि में उपस्थित होकर, अपना मुँह ऊपर की ओर उठाकर और गर्दन हिलाकर, सभासदों को हँसा दे, तो उसके व्यापार को भी कविता कहना होगा। आजकल के विद्वानों का मत है कि अन्तःकरण में रस को उत्पन्न करके, और थोड़ी देर के लिए और बातों को भुला कर, उदार विचारों में मन को लीन कर देना ही कविता का सच्चा पर्यवसान है। कविता द्वारा यह भासित होना चाहिये कि जो बात हो गई है वह अभी हो रही है; और जो दूर है वह बहुत निकट दिखलाई देती है।

एक पण्डित का मत है कि कविता एक भ्रम है; परन्तु वह सुखदायक है। उसका अच्छी तरह उपभोग लेने के लिए थोड़ी देर तक अपनी सज्ञानता भूल जानी चाहिए। जो कुछ सीखा है उसका भी विस्मरण कर डालना चाहिए; और कुछ काल के लिए बालक बन जाना चाहिए। कमल के समान आँख नहीं होती; कोकिल का-सा कण्ठ किसी का नहीं होता; जो कुछ इसमें लिखा है, झूँठ है—इस प्रकार की बात मन में आते ही कविता का सारा रस जाता रहता है। कविता में जो कुछ कहा गया है उसे ईश्वर-वाक्य मान कर उसका रस लेना चाहिये।

आजकल के इतिहास वेत्ताओं का कथन है कि देश में जैसे जैसे अधिक सुधार होता है और जैसे-जैसे विद्या-बुद्धि बढ़ती जाती है; वैसे-ही-वैसे कविता-शक्ति भी कम हो जाती है। अब पहले के ऐसे अच्छे कवि नहीं होते। यह इस बात का प्रमाण

है। यह बहुत ठीक है कि ज्यों-ज्यों हम प्राचीन काल की ओर देखते हैं त्यों-त्यों कविता विशेष रसाल दिखाई देती है। प्राचीन कवियों का सारा ध्यान अर्थ की ओर रहता था; भाषा की ओर बहुत ही कम रहता था इसीलिए उनकी कविता में उनका हृद्गत-भाव बहुत ही अच्छी तरह से प्रथित हो जाता था। परन्तु उनके अनन्तर होने वाले कवियों में प्रबन्ध, शब्द-रचना और अलङ्कार आदिकों की ओर ध्यान अधिक जाने से कविता में अर्थ-सम्बन्धी हीनता आगई। एक बात और भी है। कविता के लिए एक प्रकार की भावुकता, एक प्रकार की सात्विकता और एक प्रकार का भोलापन दरकार होता है। वह समय के परिवर्तन से प्रतिदिन कम हो जाता है, इसीलिए पहले की जैसी कविता अब नहीं होती। और प्राचीन कवियों की कविता के सरस होने का एक कारण यह भी है कि किसी प्रकार की आशा के वशीभूत होकर के वे कविता न करते थे। सत्कृत्य द्वारा कालक्षेप करने, अथवा परमेश्वर को भक्ति-द्वारा प्रसन्न करने ही के लिए वे प्राय: कविता करते थे। यह बात अब बहुत कम पाई जाती है। कविता में हीनता आने का यह भी एक कारण है।

कविता में विश्रान्ति मिलती है। वह एक प्रकार का विराम-स्थान है। उसमें मनोमालिन्य दूर होता है और थकावट कम हो जाती है। चक्की पीसने के समय स्त्रियाँ, काम करने में मजदूर आदि परिश्रम कम होने के लिए, गीत गाते हैं। जैसे मनुष्यों के लिए गाने की जरूरत है वैसे ही देश के लिए कविता की जरूरत है। प्रतिदिन नये नये गीत बनते हैं और

. . . . .

. .

चाहता है।

५—नायिका-भेद

औपन्यासिक पुस्तकों के लिए केवल काशी ही, और तान्त्रिक पुस्तकों के लिए केवल मुरादाबाद ही, इस समय प्रसिद्ध हो रहे हैं। परन्तु नायिका-भेद और नख-शिख-वर्णन के लिए यह देश का देश ही, किसी समय प्रसिद्ध था। देश से हमारा अभिप्राय उन प्रान्तों से है जहाँ हिन्दी बोली जाती है और जहाँ हिन्दी ही में कवियों की कविता-स्फूर्ति का प्रकाश होता है। राजाश्रय मिलने की देरी, राजाजी को सब प्रकार की नायिकाओं के रसास्वादन का आनन्द चखाने के लिए कविजी को देरी नहीं। १० वर्ष की अज्ञात-यौवना से लेकर ५० वर्ष की प्रौढ़ा तक सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद बतला कर और उनके हाव, भाव, विलास आदि की सारी दिनचर्या वर्णन करके ही कविजन सन्तोष नहीं करते थे। दुराचार में सुकरता होने के लिए दूती कैसी होनी चाहिए, मालिन, नाइन, धोबिन इत्यादि में से इस काम के लिए कौन सबसे अधिक प्रवीण होती है, इन बातों का भी वे निर्णय करते थे। नायक के सहायक विट और चेटक आदि का भी वर्णन करने में वे नहीं चूकते थे। इस प्रकार की पुस्तकों अथवा कविताओं का बनना अभी बन्द नहीं, वे बराबर बनती जाती हैं। यद्यपि पहले बहुत बनती थीं इसीलिए हमने भूतकाल का प्रयोग किया है।

सब नायिकाओं में नवोढ़ा अधिक भली होने के कारण किसी ने, अब कुछ ही वर्ष हुए, एक 'नवोढ़ादर्श' नाम की पुस्तक, अकेले नवोढ़ा ही नायिका की महिमा से आद्योपान्त भर कर प्रकाशित की है। समस्यापूर्ति करने वाले कवि-समाज और कवि मण्डलों का तो नायिका-भेद जीवन सर्वस्व हो रहा है। सुनते हैं 'सुकवि-सरोज विकास' में भी नायिका-भेद ही है नवोढ़ाओं और विश्रब्ध नवोढ़ाओं ही की कृपा से हमारी भाषा की कविता-लता सूखने नहीं पाई। कविजन अब तक उसे अपने काव्य-रस से बराबर सींच रहे हैं और मुग्धमति युवक उसकी शीतल छाया में शयन करके विषयाकृष्ट हो रहे हैं।

इस निबन्ध का नाम 'नायिका-भेद' पढ कर नायिका-भेद के भक्तों को यदि यह आशा हुई हो कि इसमें नवोढ़ा के सुरतांत और प्रौढ़ा के पुरुषायित-सम्बन्ध में कोई नवीन युक्ति उन्हें सुनने को मिलेगी तो उनको अवश्य हताश होना पड़ेगा। परन्तु हताश क्यों होना पड़ेगा? आज तक नायिकाओं का क्या कुछ कम वर्णन हुआ है? इस विषय में, हिन्दी-साहित्य में, जो कुछ विद्यमान है उससे भी यदि उनकी काव्य-रस पीने की तृषा शान्त न हो तो हम यही कहेंगे कि उनके उदर में बड़वानल ने निवास किया है।

ऋषियों के बनाये हुए संस्कृत-ग्रन्थों तक में नायिकाओं के भेद कहे गये हैं, परन्तु पद्माकर और मतिराम आदि के ग्रन्थों का जैसा विस्तार वहाँ नहीं है। नायिकाओं की भेद-भक्ति हमारे यहाँ बहुत प्राचीन काल से चली आई है। कालिदास के काव्यों में भी नायिकाओं के नाम पाये जाते हैं।

निद्रावशेन भवताप्यन वेक्षमाणा
पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव ॥

लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी
सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः।

—रघुवंश, सर्ग ५।

यहाँ खण्डित नायिका का नाम आया है। संस्कृत में ऐसी अनेक पुस्तकें हैं जिनमें नायिकाओं की विभाग-परम्परा और उनके लक्षणों का विवरण है। तथापि हिन्दी-पुस्तकों की जैसी प्रचुरता संस्कृत में नहीं है। दशरूपक और साहित्य-दर्पण इत्यादि में प्रसङ्ग वश इस विषय का विचार हुआ है, परन्तु वे विचारे गौण हैं, मुख्य नहीं। जिसमें केवल नायिकाओं ही का वर्णन हो, ऐसी पुस्तक संस्कृत में एक 'रस-मञ्जरी' ही हमारे देखने में आई है। मिथिला के रहने वाले पं० भानुदत्त ने उसे बनाया है। भानुदत्त के अनुसार नायिकाओं के ११५२ भेद हो सकते हैं। इस पुस्तक में उन्होंने नायिकाओं का यद्यपि बहुत विस्तृत वर्णन किया है, तथापि उनका वर्णन संस्कृत में होने के कारण इतना उद्वेगजनक और हानिकारक नहीं जितना सुरतारम्भ सुरतान्त और 'विपरीत' में विलग्न होने वाले हमारे हिन्दी-कवियों का है। इस विषय में हिन्दी-पुस्तकों का प्राचुर्य देख कर यही कहना पड़ता है कि इस अल्पोपयोगी नायिका-भेद में संस्कृत-कवियों की अपेक्षा हमारी भाषा के कवियों और भाषा की कविताओं के प्रेमियों की सविशेष रुचि रहती आई है। नगरों की बात जाने दीजिये, छोटे-छोटे गाँवों तक में, साठ-साठ वर्ष के बुड्ढों को भी नायिका-भेद की चर्चा करते और ज्ञात-यौवना और अज्ञात-यौवना के अन्तर के तारतम्य पर वक्तृता देते हमने अपनी आँखों देखा है।

निश्चयात्मकता से हम यह नहीं कह सकते कि नायिका-भेद की उत्पत्ति कब से हुई और क्यों हुई? वात्स्यायन मुनि-कृत 'कामसूत्र' बहुत प्राचीन ग्रन्थ है। उसमें नायिका और नायि-

काओं के सामान्य भेद कहे गये हैं। ये भेद वैसे ही है जैसे इस प्रकार की पुस्तकों मे हुआ करते हैं वह आडम्बर और वह अश्लीलता जो आजकल के नायिका-भेद मे पायी जाती है, वहाँ बिलकुल नही। जान पड़ता है, इसी प्रकार के ग्रन्थ नायिका-भेद की उत्पत्ति के कारण हैं। सम्भवतः इन्हीं को देखकर नायिकाओं के पक्षपातियों ने इसे पृथक् विषय निश्चित करके पृथक्-पृथक् अनेक ग्रन्थ रच डाले और सैकड़ों, नहीं हजारों, भेद उत्पन्न करके सब रसों के राजा का राज्य विस्तार बहुत ही विशेष बढ़ा दिया। नायिकाएँ ही शृङ्गार-रस की अवलम्बन हैं, और शृङ्गार-रस ही सब रसों का राजा है। राजा का जीवन ही जब इन नायिकाओं पर अवलम्बित है तब कहिए क्यों हमारे पुराने साहित्य मे इनकी इतनी प्रतिष्ठा न हो? इनकी कीर्ति का कीर्तन करके क्यों कविजन अपनी वाणी को सफल न करें? और इन्ही की बदौलत नाना प्रकार के पुरस्कार पाकर क्यों न वे अपने को कृतकृत्य मानें?

कृष्ण, राधा, गोपिका, वृन्दावन, यमुना, कुञ्जकुटीर आदि ने नायिका-भेद के वर्णन मे विशेष सहायता पहुँचाई है; परन्तु यदि कोई यह कहे कि यह भेद-वर्णन राधा-कृष्ण के उपासना-तत्त्व से सम्बन्ध रखता है तो उसका कथन कदापि मान्य नहीं हो सकता। नायिकाओं मे 'सामान्य' एक ऐसा भेद है जिससे कृष्ण का कोई सम्पर्क नही, और नायिका-भेद के आचार्यों ने कृष्ण की नायिकाओं के भेद नही किये, किन्तु सामान्य रीति से नायिका-मात्र की भेद-परम्परा बतलाई है अतएव कृष्ण के उपासकों के लिए इस विषय पर कृष्ण का सम्बन्ध न बतलाना ही अच्छा है।

जहाँ तक हम देखते हैं स्त्रियों के भेद-वर्णन मे कोई लाभ नही, हानि अवश्य है; और बहुत भारी हानि है। फिर हम नहीं

जानते, क्या समझ कर लोग इस विषय के इतना पीछे पड़े हुए हैं। आश्चर्य इस बात का है कि इस भेद-शक्ति के प्रतिकूल आज तक किसी ने चकार तक मुख से नहीं निकाला। प्रतिकूल कहना तो दूर रहा, नायिकाओं की नई-नई चेष्टाओं का वर्णन करने वालों को प्रोत्साहन और पुरस्कार तक दिया गया है। इस प्रोत्साहन का फल यह हुआ कि नवोढ़ा आदि नायिकाओं के सम्बन्ध में कवियों को अनन्त स्वप्न देखने पड़े हैं। हिन्दी के समान बंगला मराठी, गुजराती भाषायें भी संस्कृत से निकली हैं, परन्तु इन भाषाओं में नायिकाओं का कहीं भी उतना साम्राज्य नहीं जितना हिन्दी में है। हिन्दी में इनका आधिक्य क्यों? जान पड़ता है, और कहीं भी ठहरने के लिये सुखदाई स्थान न पाकर बेचारे नायिका-भेद ने विवश होकर, हिन्दी का आश्रय लिया है। इस विस्तृत विश्व में ईश्वर ने इतने प्रकार के मनुष्य, पशु, पक्षी, वन, निर्झर, नदी, तड़ाग आदि निर्माण किये हैं कि यदि सैकड़ों कालिदास उत्पन्न होकर अनन्तकाल तक उन सबका वर्णन करते रहें तो भी उनका अन्त न हो। फिर हम नहीं जानते और विषयों को छोड़ कर नायिका-भेद सदृश अनुचित वर्णन क्यों करना चाहिए? इस प्रकार की कविता करना वाणी की विगर्हणा है।

अब देखिये, इस प्रकार की पुस्तकों में लिखा क्या रहता है। लिखा रहता है परकीया (पर स्त्री) और वेश्याओं की चेष्टा और उनके कलुषित कृत्यों के लक्षण और उदाहरण! परकीया के अंतर्गत अविवाहित कन्याओं के पापाचरण की कथा!! पुरुषमात्र में पतिबुद्धि रखने वाली कुलटा स्त्रियों के निर्लज्ज और निरर्गल प्रलाप!!! और भी अनेक बातें रहती हैं। विरह-निवेदन करने अथवा परस्पर मेल करा देने के लिये दूतों और दूतियों की योजना का वर्णन रहता है; वेश्याओं को बाजार में बिठला कर उनके द्वारा हजारों के हृदय-हरण किये जाने की कथा रहती है।

परकीयाओं के द्वारा, कबूतर के बच्चे की जैसी कूजित के मिष, पुरुषों के आह्वान की कहानी रहती है। कहीं कोई नायिका अँधेरे में यमुना के किनारे दौड़ी आ रही है; कहीं कोई चाँदनी में चाँदनी ही के रङ्ग की साड़ी पहन कर घर से निकल, किसी लता-मण्डप में बैठी हुई किसी की मार्ग-प्रतीक्षा कर रही है; कहीं कोई अपनी सास को अन्धी और अपने पति को विदेश गया बतलाकर द्वार पर आये हुये पथिक को रात भर विश्राम करने के लिये प्रार्थना कर रही है; कहीं कोई अपने प्रेम पात्र के पास गई हुई सखी के लौटने में विलम्ब होने से कातर होकर आँसुओं की धारा से आँखों का काजल बहा रही है!!! यही बातें विलक्षण उक्तियों के द्वारा, इस प्रकार पुस्तकों में विस्तार पूर्वक लिखी गई हैं। सदाचरण का सत्यानाश करने के लिए क्या इससे भी बढ़ कर कोई युक्ति हो सकती है? युवकों को कुपथ पर ले जाने के लिए क्या इससे भी अधिक बलवती और कोई आकर्षण शक्ति हो सकती है? हमारे हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की पुस्तकों का आधिक्य होना हानिकारक है; समाज के सच्चरित्र की दुर्बलता का दिव्य चिह्न है। हमारी स्वल्प-बुद्धि के अनुसार इस प्रकार की पुस्तकों का बनना शीघ्र ही बन्द हो जाना चाहिए, और यही नहीं, किन्तु आज तक ऐसी-ऐसी जितनी इस विषय की दूषित पुस्तकें बनी हैं उनका वितरण होना भी बन्द हो जाना चाहिए। इन पुस्तकों के बिना साहित्य को कोई हानि नहीं पहुँचेगी; उलटा लाभ होगा। इसके न होने से भी समाज का कल्याण है। इसके न होने से ही नववयस्क मुग्धमति युवाजनों का कल्याण है। इनके न होने से ही इनके बनाने और बेचने वालों का कल्याण है।

जिस प्रकार नायिकाओं के अनेक भेद कहे गये हैं और भेदानुसार उनकी अनेक चेष्टाएँ वर्णन की गई हैं, उसी प्रकार उनके

के भी भेद और चेष्टा-वैलक्षण्य का वर्णन किया जा सकता है। जब नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा नायिका होती है तब नवोढ़ और विश्रब्ध-नवोढ़ नायक भी हो सकते हैं। वासकसज्जा, विप्रलब्धा और कलहान्तरिता नायिका के समान वासकसज्ज, विप्रलब्ध और कलहान्तरित नायक होने में क्या आपत्ति हो सकती है? कोई नहीं। क्या स्त्री ही अज्ञात यौवना होती है? पुरुष अज्ञात-यौवना नहीं होता? "रसमञ्जरी" वाले कहते हैं कि स्वभाव भेद से पुरुषों के चार ही भेद होते हैं—अर्थात् अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ, परन्तु अवस्था भेद से स्त्रियों के अनेक भेद होते हैं। यह बात हमारी समझ में नहीं आती। मनोविकार दोनों में प्रायः एक हो से होते हैं। जिस प्रकार के लक्षण और उदाहरण नायिकाओं के विषय में लिखे गये हैं, उसी प्रकार के लक्षण और उदाहरण प्रायः पुरुषों के विषय में भी लिखे जा सकते हैं। परन्तु हमारी भाषा के कवियों ने नायकों के ऊपर इस प्रकार की पुस्तकें नहीं लिखीं। इसलिए हम उनको अनेक धन्यवाद देते हैं। यदि कहीं वे इस ओर भी अपनी कवित्व-शक्ति की योजना करते, तो हमारा कविता-साहित्य और भी अधिक चौपट हो जाता।

६—हंस-संदेश

संस्कृत में सहृदयानन्द नामक एक बहुत ही सरस काव्य है। उसके कर्त्ता कवि की जबानी एक पुरानी कथा सुनिये।

निषध देश का राजा नल, एक बार, वन विहार को निकला। नगर से कुछ दूर जाने पर, एक उपवन में उसने एक मनोहर तालाब देखा। उसमें कमल खूब खिल रहे थे। मछलियाँ खेल रही थीं और अनेक प्रकार के जल-पक्षी कलोल कर रहे थे। वहाँ पर उसने एक बहुत ही मनोहर हंस देखा। राजा को वह इतना पसन्द आया कि उसने उसे सजीव पकड़ना चाहा। इसलिए उसने अपने निषङ्ग से एक सम्मोहन शर, उस पर चलाने के लिए, निकाला। शर को उसने शरासन पर रक्खा ही था कि उसने एक अलक्षित वाणी सुनी। उस वाणी का मर्म यह था कि—

'हे नरेश, इस पर बाण मत छोड़। यह तेरा अभीष्ट सिद्ध करेगा। तेरे ही रूप-गुण-सम्पदा के अनुरूप यह तुझे एक त्रिभुवन-मोहिनी राज-कन्या प्राप्त करा देगा। उसे तू अपनी महिषी बनाना।'

यह सुन कर उस आकर्णकृष्ट बाण को राजा ने उतार लिया।

नल की इस दयालुता पर वह हंस बहुत प्रसन्न हुआ। वह अपना स्थान छोड़ कर नल के कुछ निकट आया और बोला— "हे निषधनाथ, ईश्वर तेरा कल्याण करे! तूने मुझ पर दया दिखलाई है। इसके बदले में मैं भी तेरी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। तू मुझे साधारण पक्षी मत समझ। मैं ब्रह्मा के रथ को खींचता हूँ; इन्द्र के सिंहासन के पास बैठता हूँ; जयन्त इत्यादि देव-बालकों के साथ खेलता हूँ; और मन्दाकिनी के किनारे विहार किया करता हूँ; तूने अपने नृपोचित गुणों से इस भूमण्डल को स्वर्ग से भी अधिक सुषमाशाली कर रक्खा है। इसलिए कभी कभी मैं भी यहाँ घूमने आजाया करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि जैसे और देवता मुझसे सख्य-भाव रखते हैं वैसे ही तू भी रख।"

नल ने इस बात को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। आज से तू मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारा हुआ, यह कह कर राजा ने बड़े ही प्रेम से उस पक्षी के शरीर पर अपना कर-कमल फेरा। कुछ देर तक दोनों परस्पर प्रेमालाप करते रहे। अनन्तर नल के लिए एक कन्या रत्न ढूँढ़ने के निमित्त, हंस ने, राजा की अनुमति पाकर, वहाँ से प्रस्थान किया। राजा भी नगर की तरफ़ लौटा, परन्तु शरीर मात्र से; मन से नहीं। मन उसका उस हंस ही के साथ उड़ गया था।

हंस के वियोग में नल को बड़ा दुःख हुआ। दिन-रात वह उसी का चिन्तन करने लगा। किसी काम में उसका दिल न लगने लगा। इस समय वसन्त का आविर्भाव हुआ। इससे और भी अधिक पीड़ा हुई। वसन्त विरहियों का वैरी है। अतएव दिल बहलाने के लिए; अपने उद्यान में, एक बावली के किनारे राजा जा बैठा। वहाँ वह सैकड़ों तरह की भावनाएँ कर रहा था कि सहसा उसका परिचित वही हंस वहाँ आता हुआ उसे

देख पड़ा। राजा को परमानन्द हुआ। उसे खोई हुई निधि-सी मिली। नल ने उस दिव्य हंस को अपनी गोद में बिठाला कुशल समाचार पूछने के अनन्तर राजा ने उसे अपने हाथ से मृणालांकुर खिलाये, रास्ते की उसकी सारी थकावट जाती रही। नल ने हंस से सुना कि स्वर्गलोक में जितने शहर, गाँव और कस्बे हैं सब में उसके यशोगीत गाये जाते हैं। गन्धर्व-नारियों, किन्नरियों और सुराङ्गनाओं को अब और किसी विषय के गीत अच्छे नहीं लगते। औरों को लोग सुनते भी नहीं। इससे गायक और गायिकाएँ बहुधा यहाँ आती हैं, उसके नये-नये चरित्र सुनती हैं; और उन्हीं के आधार पर श्लोक, गजल और गीतों की वे रचना करती हैं।

मामूली बातें हो चुकने पर हंस ने मतलब की बात शुरू की जिसे सुनने के लिए नल घबरा रहा था। उसने कहा—मित्र, तेरे लिए एक अनन्य-साधारण कन्या ढूँढ़ने में मुझे बड़ी हैरानी उठानी पड़ी। ऊपर जितने लोक हैं, सब की खाक मैंने छान डाली। पर एक भी सर्वोत्तम रूपवती मुझे न देख पड़ी। तब मैंने अमरावती की राह ली, वहाँ पर भी मैंने एक-एक घर ढूँढ़ डाला। तिस पर भी मेरा काम न हुआ। मेरे चेहरे पर उदासी छा गई। मैं डरा। मुझे यह विश्वास होने लगा कि मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग हो जायगी, मैं अपना प्रण पालन न कर सकूँगा: मुझे तेरे लायक कोई कामिनी न मिलेगी। जब अमरावती ही में नहीं, तब उसके होने की और कहाँ सम्भावना हो सकती है? इसी सोच-विचार में मेरे मिनट, घण्टे और दिन जाने लगे। एक दिन मेरा जी बहुत ऊबा। इसलिए मैं देवराज की सभा में गया। मैंने कहा चलो वहीं चलकर कुछ देर जी बहलावें।

वहाँ मैंने देखा कि सब देवता यथास्थान बैठे हैं। साहित्य-शास्त्री देवता, महाराजा अयोध्या के रसकुसुमाकर पर वाद्विवाद

कर रहे हैं। कोई इस नायिका में दोष निकाल रहा है, कोई उसमें। कोई कहता है, रूप नहीं अच्छा; कोई कहता है भाव नहीं अच्छा। इसी तरह अपनी-अपनी हाँक रहे हैं। इस खींचा-तानी को देखकर सुरेन्द्र ने कामेश्वर शास्त्री की तरफ़ देखा। इन शास्त्री महाराज का जन्म सृष्टि के आदि का है। पर इतने बूढ़े हो जाने पर भी नायिकाओं के गुणदोष की पहचान में आप अपनी सानी नहीं रखते। यही समझ कर सुरेन्द्र महाराज ने आज्ञा दी कि शास्त्रीजी, अब आप भी कुछ कहिये; आपकी राय में कौन रमणी सबसे अधिक रूपवती है।

कामेश्वरजी ने सुरेश्वर की आज्ञा सिर पर रखी। अपनी पगड़ी के ढीले पेचों को उन्होंने कड़ा किया। फिर उन्होंने वक्तृता आरम्भ की। आप बोले—

अमरराज, इनमें से एक भी नायिका मुझे अच्छी नहीं जँचती। सब में कोई न कोई दोष है। मेरी गृहिणी को यह घमण्ड था कि मैं बहुत ही रूपवती हूँ। इससे वह कभी-कभी मुझे भी कुछ न समझती थी। एक बार उसका गर्व-गर्भित व्यवहार मुझे दुःसह हो उठा। इसलिए मैंने उसके गर्व को दूर करना चाहा। मैं एक सर्वाङ्गसुन्दरी रमणी की खोज में निकला इसमें मैं बहुत दिन तक हैरान रहा। आखिर को मुझे कामयाबी हुई। विदर्भ देश के राजा भीम की कन्या दमयन्ती को देख कर मैं स्तम्भित हो गया। वैसी सुन्दरी मैंने कभी नहीं देखी थी। उसका चित्र मैं खींच लाया। उसे देख कर मेरी घरवाली की अकल ठिकाने आ गई। तब से उसका गर्व दूर हो गया और वह मुझे वक्त पर रोटी देने लगी।

एक घण्टे तक साहित्याचार्य कामेश्वर शास्त्री ने दमयन्ती के रूप का वर्णन किया। उस समय सुरेन्द्र सभा में अनेक सुन्दरियाँ बैठी हुई थीं। दमयन्ती का नखशिख-वर्णन सुन कर

उनकी अजीब हालत हुई। वे एक-दूसरे का मुँह ताकने लगीं। तिलोत्तमा का चेहरा काले तिल के समान काला पड़ गया। मदालसा का सौंदर्य-मद उतर गया। सुलोचना ने अपने लोचन बन्द कर लिए। सुमध्यमा सखियों के मध्य में छिप गई। मेनका का मन मलिन हो गया। कलावती अपनी कलाओं को भूल गई। सुविभ्रमा का विभ्रम भ्रम में पड़ गया। शशिप्रभा निष्प्रभ हो गई और चित्र-लेखा चित्र के समान बैठी रह गई।

शास्त्रीजी की बात सुन कर मैं बहुत खुश हुआ। मैं वहाँ से फौरन ही उड़ा। कोई दो घण्टे में विदर्भपुरी में दाखिल हुआ। वहाँ मैं दमयन्ती के प्राङ्गण में पहुँचा। उस जगह एक हौज था। उसमें एक फव्वारा था। उसकी चोटी पर मैं जा बैठा। कुछ देर में मुझे वहाँ दमयन्ती देख पड़ी। उसके रूप को देख कर मैं अचरज में पड़ गया। मित्र, इसके पहिले मैंने वैसी सुन्दरी कहीं न देखी थी रूप-वर्णन में शास्त्रीजी की जड़ता का मुझे तब अन्दाज हुआ। कहाँ दमयन्ती का भुवन-मोहन रूप और कहाँ शास्त्रीजी का शुष्क वर्णन। दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर! आखिर बूढ़े ही तो ठहरे!

मैंने देखा, दमयन्ती की दशा अच्छी नहीं। वह उदास है। इसलिए उसकी चिन्ता का कारण जानने की इच्छा से मैं वहीं ठहर गया। उस हौज के पास दमयन्ती के कई क्रीड़ा-हंस भी थे। इन्हीं के साथ मैं भी इधर-उधर घूमने और दमयन्ती की चर्या अवलोकन करने लगा। मैं बीच में मनुष्य की बोली बोलने लगा। उसे सुन कर दमयन्ती को बड़ा कौतूहल हुआ। वह मेरी तरफ बार-बार देखने लगी। मैं यही चाहता था। इतने में विघ्न हुआ। दमयन्ती को खेदवती देख, एक सखी उससे खेद का कारण पूछने लगी। वह बोली—

"सखी लवलीनता के समान तेरी गण्डस्थली ... पड़ ग

है। लाल कमल के समान अपने कोमल कर-पल्लव के बोझ से उसे तू क्यों तङ्ग कर रही है? देख, यह निष्करुण पिक अध-खिली कलियों वाली आम की इस पतली शाखा को पीड़ित कर रहा है। क्यों नहीं तू उसे अपनी करतालिका से उड़ा देती? सुगन्ध के लोलुप ये भ्रमर खिले हुए फूलों को छोड़ कर तेरी तरफ आते हैं, पर व्याकुल होकर वे पीछे हट जाते हैं। इससे जान पड़ता है कि सन्ताप से तेरा श्वास तप रहा है। तेरे कान में खोंसे हुए तमाल-दल को खींचने में जिसे तत्पर देख कौतूहल होता था, वह हरिण-शावक तुझे खिन्न-हृदय जान कर मुँह में रक्खे गये दर्भांकुरों को भी नहीं खाता। करतल में रखकर जिसे तू अनेक प्रकार की सरस बातें सिखलाती थी, वह तेरा क्रीड़ा-शुक तुझे चुप देख, ऐसा मूक हो रहा है जैसे अभी नया जङ्गल से पकड़ कर आया हो। अपने इस केलि-हंस को तो तू जरा देख। उसकी सहचरी आगे चल कर बड़ी ही मधुर और रस-भरी वाणी से, उसे पुकार रही है। परन्तु वह उसके पास नहीं जाता। वह चाहता है कि तू अपने पाणि-पल्लव से मृणाल का एक टुकड़ा उसकी चोंच में रख दे। क्या बात है? है क्या कारण कि यह अतर्कित आई हुई पियराई, कनक-चम्पक के समान तेरी गोर कान्ति को बिगाड़ रही है? एक तो तू स्वयं ही दुबली-पतली थी तिस पर भी यह अधिक दुबलापन क्यों।"

इस प्रकार सैकड़ों तरह की बातें दमयन्ती की सखी ने उससे पूछीं, परन्तु उत्तर में दमयन्ती के मुँह से एक भी शब्द न निकला। वह पूर्ववत् चुपचाप बैठी रही। हाँ, एक लम्बी उसाँस मात्र उसने ली। तब उसकी एक और सखी बोली। दमयन्ती के मौनावलम्बन और दुबलेपन का कारण वह समझ गई थी। उसने कहा—

'इसका पिता इसे एक योग्य वर को देना चाहता है। इ
लिए उसने कुछ समय हुआ, अनेक चतुर चित्रकारों को बुलाया
उनसे उसने हजारों रूप-गुण-सम्पन्न राजकुमारों के चित्र तैया
कराये। एक दिन वे चित्रफलक मेरी नजर में पड़ गये। मुझ प
मूर्खता सवार हुई। मैं उनको इसके पास उठा लाई। इसने ब
ध्यान से उनमें से एक-एक को देखा। देखते-देखते एक त्रिलोकी
तिलक युवा पर मोहित हो गई। तभी से इसकी हालत ख़राब
है। तभी से यह अथाह चिन्ता-सागर में गोते खा रही है।

इसके शरीर के भीतर जलने के भय से इसकी श्वास वायु
इससे दूर भाग रही है। आँसुओं की धार में डूब जाने के डर
से नींद इसके नयनों के पास नहीं आती। उशीर के लेप लगाने
से यह और भी अधिक सन्तप्त हो उठती है। कमलिनी-दलों के
पंखे को देख कर इसे क्रोध आता है। जिसने इसके हृदय में
प्रवेश किया है, उसी सुभग का यह संतत स्मरण करती रहती है।
इसका सन्ताप मुझे तो, इस तरह दुर्निवार मालूम होता है।
खिड़की की राह से चन्द्रमा को देखने में इस चञ्चलाक्षी को पीड़ा
होती है। इसलिए यह अपना मुँह नीचा कर लेती है। पर ऐसा
करने से इसका मुँह इसके वक्ष-स्थल में प्रतिबिम्बित हुआ देख
पड़ता है। उसे देख चन्द्रमा के धोखे यह बेतरह काँप उठती है।
एक तो स्वभाव ही से यह सुकुमार और दुबली थी, फिर मनोज
ने इसे और भी दुर्बल कर दिया। यह देख कर इसके हाथ के
कङ्कणों को यह सन्देह हुआ कि अब यह हमारा बोझ न सह
सके इसीलिए, देखो वे जमीन पर जा गिरे हैं। यह कुमुदिनी
इस पापिष्ठा चाँदनी से अभी तक प्रीति रखती है। सखी, इसको
किसी वस्तु से ढक दे, जिसमें इसे चन्द्र-किरण का स्पर्श न हो।
नहीं तो कहीं इसे भी मेरे समान ज्वर न आ जाय। इस तरह
यह बार-बार कहा करती है। न इसे सघन वृक्षों की छाया से

शीतल उद्यान में आराम मिलता है, न चन्दन-चर्चित और मणि-मण्डित अट्टालिका में आराम मिलता है; और न चन्द्र-मरीचियों से धौत महल के भीतर ही आराम मिलता है।

इस प्रकार दमयन्ती की गुप्त चेष्टाओं का वर्णन करके उसकी सखियाँ उस समय के अनुकूल उपचार करने लगीं। उन्होंने कमलिनी-दलों की एक कोमल शय्या प्रस्तुत करके उस पर उसे लिटाया। पर बेचारी दमयन्ती को उस महा शीतल शय्या पर वैसा ही सन्ताप हुआ, जैसा कि मार्तण्ड की प्रचण्ड किरणों से उत्तप्त हुये गढ़े में पड़ी हुई मछली को होता है। उसे बहुत ही व्याकुल देख उसकी सब से प्यारी सखी ने ताजी मृणाल-लता को उसके कण्ठ पर रक्खा कि कुछ तो उसे ठंडक पहुँचे। परन्तु हुआ क्या? उसके ताप की प्रचण्डता से वह मृणाल-लता नीलम के समान काली हो गई।

इस प्रकार दुर्निवार ताप से तपी हुई उस बाला को देख मुझे दया आई। मैं धीरे-धीरे उसके पास गया और अपने पंखों से उस पर हवा करने लगा। मुझे इस तरह अपनी सेवा करते देख उसने अपनी दृष्टि मेरी तरफ फेरी। तब, अवसर पाकर, मैंने उससे कहा—

"तरुणि, जिस तरुण का तू चिन्तन करती है वह धन्य है उसके पुण्य की सीमा नहीं। जो युवा तुझसे प्रेम-बन्धन करने की अभिलाषा रखते हैं उनको मैं त्रिभुवन में सबसे बड़ा भाग्य-शाली समझता हूँ। सुन्दरि, सुरेन्द्र के समान देवता भी तुझे पाने की कामना करते हैं। तब यदि, मनुष्यों में तेरा प्रार्थित तरुण तुझे न मिले, तो बड़े आश्चर्य की बात है। तेरे स्मरण के कारण मन्दार-मालाओं से अलंकृत मणि-मन्दिरों में इन्द्राणी के साथ बातचीत करना भी इन्द्र को अच्छा नहीं लगता। क्षीर-सागर के बीच में रह कर भी, और सैकड़ों नदियों के द्वारा वरुण-

स्पर्श किए जाने पर भी, तेरे सोच में, वारिपति वरुण को ज्वर चढ़ रहा है। तेरे कारण पञ्चसर से पीड़ित किया गया कुबेर आँखें बन्द करके चन्द्रमौलि के पास से छूट कर, उनकी सखियों के पास चला जाता है। चन्द्रचूड़ की चूड़ा के चन्द्रमा की किरणें उससे नहीं सही जातीं। तेरे त्रैलोक्य-मोहक तनु को देख कर भगवान् अरविन्दु-बन्धु (सूर्य) को रागान्ध रोग हो गया है। इसी से पृथ्वी के चारों ओर वे दिन-रात गतागत किया करते हैं। गिरिजा को गिरीश के वाम भाग में बैठी हुई देख कर यदि तुझे स्पर्द्धा उत्पन्न हुई हो तो साफ-साफ मुझसे तू वैसा कह दे। मैं तुझे बहुत जल्द उनके दाहिने भाग से बिठला दूँ। अधिक कहना सुनना मैं व्यर्थ समझता हूँ। यदि तू कहे तो मैं तुझे लेकर, दूसरी लक्ष्मी के समान, नारायण के अङ्क में अभी बिठला आऊँ। मैंने तेरे सामने बहुत-से देवताओं के नाम लिए। त्रिलोकी में जितनी विलासिनियाँ हैं, उनके लिए वे सभी दुर्लभ हैं। कृपा करके अब तू मुझे बतला दे कि उनमें से तू किसे अपने पाणि-पीड़न से सबसे अधिक भाग्यवान् बनाना चाहती है। मेरी ये मीठी बातें सुन कर तू मुझे कहीं, पिंजड़े के शुक के समान, वृथा बकवादी मत समझना। मैं ब्रह्मा का वैमानिक हूँ। मेरे लिए दुनियाँ में कोई वस्तु दुष्कर नहीं।"

यह सुनकर उस मृगाक्षी को मेरी बातों पर विश्वास आ गया और उसने उस फलक को, जिस पर तेरी तस्वीर थी, बड़े प्रेम से अपनी छाती से लगाया। तुझ में, इस तरह अनुरक्त हुई उस बाला को देख कर मैंने अपना प्रयास सफल समझा। मैंने कहा—"यह वीर युवक मधु है; तू माधवी है। यह कुमुद बन्धु है, तू कौमुदी है। ऐसी अनुपमेय जोड़ी का सम्बन्ध इस तरह चिरकाल तक सुखकारक हो। इस तरह उसको विश्वास दिला कर तेरे पास आने की इच्छा से ज्योंही मैं उड़ने को हुआ त्योंही,

उसने अपने कम्बु-कण्ठ से उतार कर, यह हार मेरे गले में डाल दिया। चन्द्रमा की चन्द्रिका से भी अधिक निर्मल, तेरी प्रिया की दूसरी हृदय-वृत्ति के समान, यह मुक्तालता तेरे हृदय को आनन्दित करे।

इस माला को नल ने बड़े आदर से लिया। उसको स्पर्श करते ही उसका शरीर कण्टकित हो आया। उसे उस समय यह भावना हुई कि एक छेद होने के कारण इसको मेरी प्रियतमा के अङ्ग का स्पर्श हुआ। पर पञ्चशायक के शायकों से किये गये सैकड़ों छेदों को हृदय में धारण करके भी मुझे अभी तक उसके दर्शन तक नहीं हुए। मैं बड़ा ही अभागा हूँ। कुछ देर तक वह ऐसी ही ऐसी चिन्ताओं में निमग्न रहा। जब वह उस चिन्ता-समुद्र से उन्मज्जित हुआ तब, आनन्द से पुलकित हो कर, अपने निर्व्याज मित्र उस हंस को उसने हृदय से लगा लिया। माँगने से कल्पवृक्ष माँगी हुई चीज देता है और चिन्तामणि चिन्तन करने पर चिन्तित पदार्थ के पास पहुँचता है। परन्तु बिना प्रार्थना और चिन्तना ही के मुझे एक अलौकिक प्रियतमा-रत्न प्राप्त करने की चेष्टा करके तूने इन दोनों को नीचे कर दिया। इस प्रकार राजा नल उस पक्षी से कह ही रहा था कि सायंकाल का शङ्ख बजा और उसे सायन्तनी कृति के लिए उठकर महलों में जाना पड़ा।

७—हंस का नीर-क्षीर-विवेक

संस्कृत-साहित्य में हंस, पिक, भ्रमर और कमला की बड़ी धूम है। बिना इनके कवियों की कविता फीकी हो जाती है। कोई पुराण, कोई काव्य, नाटक ऐसा नहीं जिसमें इनका जिक्र न हो। इन सब में कवियों ने एक न एक विशेषता भी रक्खी है। यथा—हंस, मिले हुए दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है; दूध पी लेता है और पानी छोड़ देता है। पिक अपने बच्चे कौवों के घोंसलों मे रख आता है और बड़े होने तक उन्ही से उनकी सेवा कराता है। भ्रमर आम की मञ्जरी में अतिशय प्रेम रखता है, पर चम्पे के पास तक नही जाता। कमल चन्द्रमा से द्वेष रखता है, उसकी विद्यमानता मे वह कभी नहीं खिलता; पर सूर्य का वह परम भक्त है। इनमें से दो एक बातें तो निःसन्देह सही हैं; पर औरों के विषय में मतभेद हैं। उदाहरण के लिए हंस और उसके नीर-क्षीर-विषयक विवेक को लीजिए।

संस्कृत काव्यों मे जगह-जगह पर यह लिखा हुआ है कि हंस मे यह शक्ति है कि वह दूध और पानी को अलग अलग कर देता है। पर दूध और पानी को अलग-अलग करते उसे

का कोई लेख कहीं नहीं मिलता। यह प्रवाद सात समुद्र पार करके अमेरिका पहुँचा। वहाँ के विद्वानों को हंस का यह अद्भुत गुण सुनकर आश्चर्य हुआ। पर वे लोग ऐसी-ऐसी बातों को चुपचाप मान लेने वाले नहीं। इस देश में हंस-विषयक यह प्रवाद हजारों वर्षों से सुना जाता है। पर इसके सत्यासत्य की जाँच आज तक किसी ने नहीं की। यदि किसी ने की भी हो, तो उसका फल कहीं लिपिबद्ध नहीं मिलता। अमेरिका में हावर्ड नाम का एक विश्वविद्यालय है। उसमें लांगमैन साहब एक अध्यापक हैं। आपने हंस के इस लौकिक गुण की परीक्षा का प्रण किया। इसलिए आपने कई हंस मँगा कर पाले और अनेक तरह से उनकी परीक्षा की। पर नीर को चीर से अलग करने में उन्होंने हंस को असमर्थ पाया, तो हंस को नीर-चीर-विवेक-विषयक वाक्यों की क्या सङ्गति हो? इस विषय के दो-चार वाक्य सुनिए—

नीर-चीर-विवेके हंस्यालस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।
विश्वास्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः॥

—भामिनीविलास।

हे हंस, यदि चीर को नीर से अलग कर देने का विवेक तू ही शिथिल कर देगा तो, फिर इस जगत में अपने कुलव्रत का पालन और कौन करेगा?

वितीर्णशिक्षा इव हृत्पतस्थसरस्वतीवाहनराजहंसैः।
ये चीर-नीर-प्रविभागदक्षा यशश्विनस्ते कवियो-जयन्ति॥

—श्रीकण्ठचरित।

हृदय में स्थित सरस्वती के वाहन राजहंसों ने मानों जिनको शिक्षा दी है, ऐसे चीर-नीर-विभाग करने में दक्ष कविजनों की महिमा खूब जागरूक है।

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षति च द्विजम् ।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः ॥

—शकुन्तला

हंस जिस तरह क्षीर ग्रहण कर लेता है और उसमें मिला हुआ पानी पड़ा रहने देता है, वैसे ही यह भी वध करने योग्य मुझे मारेगा और रक्षणीय द्विज की रक्षा करेगा।

प्राज्ञस्तु जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाऽशुभाः ।
गुणवद्वाक्यमादत्ते हंसः क्षीरमिवाम्भसः ॥

—महाभारत—आदिपर्व

लोगों के मुँह से भली-बुरी बातें सुनकर बुद्धिमान् आदमी अच्छी बात को वैसे ही ग्रहण कर लेता है, जैसे हंस जल में से दूध को ग्रहण कर लेता है।

यजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण के दूसरे अध्याय में एक वाक्य है। उसका मतलब है—जिस तरह क्रौञ्चपक्षी जल और दूध को अलग-अलग करके दूध का ही पान करता है, उसी तरह इन्द्र भी जल से सोमरस को अलग करके उसका पान कर लेता है। इसकी टीका सायनाचार्य ने इस प्रकार की है—

क्षीरपात्रे स्वमुखे प्रक्षिप्ते सति मुखगतरससम्पर्कात्क्षीरांशो जलांशश्चोभौ विविच्येते।

अर्थात्—जल मिश्रित दूध के बर्तन में हंस जब अपनी चोंच डालता है, तब मुखगत रस-विशेष का योग होते ही जल और दूध दोनों अलग-अलग हो जाते हैं, या अलग-अलग जान पड़ते हैं। इस पिछले अवतरण से यह सूचित होता है कि किसी-किसी की राय में हंस के मुँह में एक प्रकार का रस होता है। उस रस का मेल होने से पानी और दूध अलग-अलग हो जाते हैं। यदि इस रस में खट्टापन हो तो दूध का जम कर दही हो जाना सम्भव है। पर इसके लिए कुछ समय चाहिए। क्या हंस की चों

दूध के भीतर पहुँचते ही दूध जम जाता होगा? सम्भव है जम जाता हो, पर यह बात समझ में नहीं आती कि पात्र में भरे हुये जल-मिश्रित दूध में से जल को अलग करके दूध को हंस किस तरह पी लेता है। अध्यापक लांगमैन की परीक्षा से तो यह बात सिद्ध नहीं हुई।

अमेरिका के एक और विद्वान ने हंस के नीर-क्षीर-विषयक प्रवाद का विचार किया है। आपका नाम है डाक्टर काल्मस। आप वाशिंगटन में रहते हैं। आपका मत है कि हंस के मुँह की बनावट ऐसी है कि जब वह कोई चीज खाता है, तब उसका रसमय पतला अंश उसके मुँह से बाहर गिर पड़ता है और कड़ा अंश पेट में चला जाता है। आपके मत में दूध से मतलब इसी कड़े अंश से है! बहुत रसीली चीज खाते समय रस का बाहर आना सम्भव जरूर है, पर किसी चीज के कठोर अंश का अर्थ दूध करना हास्यास्पद है।

अच्छा हंस रहते कहाँ हैं और खाते क्या हैं? हंस बहुत करके इसी देश में पाये जाते हैं। उनका सबसे प्रिय निवासस्थान मानसरोवर है। यह सरोवर हिमालय पर्वत के ऊपर है। सुनते हैं, यह तालाब बहुत सुन्दर है। इसका जल मोती के समान निर्मल है। यहीं हंस अधिकता से रहते हैं और यहीं वे अण्डे देते हैं। जाड़ा आरम्भ होते ही, शीताधिक्य के कारण मानसरोवर छोड़ करके नीचे चले आते हैं, पर विन्ध्याचल के आगे वे नहीं बढ़ते। विन्ध्या और हिमालय के बीच ही में निर्मल जल राशि-पूर्ण तालाबों और नदियों के किनारे वे रहते हैं। चैत्र-वैशाख में वे फिर हिमालय की तरफ चले जाते हैं। जिन जलाशयों में कमलों की अधिकता होती है, वे हंसों को अधिक प्रिय होते हैं। वहीं वे अधिक रहते हैं। उनके शरीर का रङ्ग सफेद होता है और उनके पैर लाल होते हैं चोंच का रङ्ग भी

लाल होता है, डील-डौल उनका बतक से कुछ बड़ा होता है।

यदि हंस दूध पीते हैं, तो दूध उनको मिलता कहाँ से है? मानसरोवर में उन्होंने गायें या भैंसे तो पाल नहीं रक्खीं, और न हिन्दुस्तान ही के किसी तालाब या नदी में उनके दूध पीने की कोई सम्भावना। इससे गाय भैंस का दूध पीना हंसों के लिये असम्भव-सा जान पड़ता है। कोई-कोई कवि-जन कहते हैं कि हंस मोती चुगते हैं। पर मोती भी मानस-सरोवर में नहीं पैदा होते। यदि उसमें मोतियों का पैदा होना मान भी लिया जाय तो हिन्दुस्तान के तालाबों में, जहाँ वे कुछ दिन रहते हैं, मोतियों का पैदा होना आज तक नहीं सुना गया। हाँ, एक बार हमने कहीं पढ़ा था कि पञ्जाब, या राजपूताने की किसी झील में कुछ सूक्तियाँ ऐसी मिली थीं जिनमें मोती थे, पर क्या जितने हंस मानस-सरोवर छोड़ कर नीचे आते हैं वे सिर्फ उसी झील में जाकर रहते और मोती चुगते हैं? वहाँ भी यदि मोती बिखरे हुए पड़े हों, तभी उन्हें हंस-गण आसानी से चुगेंगे? पर यदि वे सूक्तियों के भीतर ही रहते हों तो उनको फोड़कर मोती निकालना हंसों के लिये जरा कठिन काम होगा। पर इन सम्भावनाओं का कुछ अर्थ नहीं। निर्मल जल की उपमा मोती से दी जाती है और मानस-सरोवर का जल अत्यन्त निर्मल है। इससे उसके मोती-सदृश निर्मल जल की उपमा मोती से देते-देते लोगों ने जल को ही मोती मान लिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। अतएव—

"की हंसा मोती चुगै की भूखे रह जाय" आदि में मोती चुगने से मतलब मोती के समान निर्मल जल पीने से जान पड़ता है। यह पीने की बात हुई। अब खाने की बात का विचार कीजिये। नैषधचरित के पहले सर्ग में लिखा है कि राजा नल ने एक हंस पकड़ा। हंस आदमी की बोली बोलता था। उसने राजा

से कहा—"फलेन मूलेन च वारिभूरुहां मुनेरिवेत्थं मम यस्य वृत्तयः।" अर्थात् पानी में पैदा होने वाले पौधों और बेलों के फलों और कन्दों से मैं मुनियों के समान अपना जीवन-निर्वाह करता हूँ। भामिनी-विलास में जगन्नाथराय ने हंस की एक अन्योक्ति कही है, यथा—

> भुक्ता मृणालपटली भवता निपीता—
> न्यम्बूनि यत्रनलिनानि निषेवितानि ॥
> रे राजहंस ! वद तस्य सरोवरस्य
> कृत्येन केन भवितासि कृतोपकारः ?

रे राजहंस, जिसके आश्रय में रहकर तूने मृणालदण्डों को खाया, जल-पान किया और नलिनों का स्वाद लिया उस सरोवर का तू किस प्रकार प्रत्युपकार करेगा ? मेघदूत में कालिदास कहते हैं—

> आकैलाशाद् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः।
> सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥

अर्थात् बिस और किसलय रूपी पाथेय (रास्ते में खाने पीने की सामग्री) लेने वाले राजहंस आकाश में, कैलाश पर्वत से आप (मेघ) के साथी या सहायक होंगे। विक्रमोर्वशी में भी कालिदास एक जगह कहते हैं—

> सुराङ्गना कर्षति खण्डिताग्रात् सूत्रं मृणालादिव राजहंसी

अर्थात् यह सुरांगना (मेरा मन शरीर से उसी तरह) खींच रही है, जिस तरह राजहंसी मृणाल से सूत्र खींचती है। इन अवतरणों से प्रकट है कि हंस चाहे मोती चुगते और दूध पीते ही क्यों न हों; पर वे पानी भी पीते हैं और जलरुह पौधों के फल फूल, मूल, नाल, मृणाल और बिसतन्तु भी खाते हैं। हंसों को कमल-पूर्ण जलाशयों में रहना अधिक पसन्द है। वहाँ उनके खाने की सामग्री, विशेष करके मृणाल-दण्ड, उनके भीतर के

बिस तन्तु और उनसे निकलने वाला रस है। कमल-नाल को तोड़ने से उसके भीतर से सफेद-सफेद सूत-सी एक चीज निकलती है। इसी को बिस-तन्तु कहते हैं। सुनते है, इसे हंस बहुत खाते है। मृणाल दण्ड को तोड़ो मे एक तरह का रस भी निकलता है, वह पतले दूध की तरह सफेद होता है। उसमे कुछ मीठापन भी होता है। उस रस का भी नाम क्षीर है। पेड़ों से निकलने वाले पानी के सदृश सफेद रङ्ग के प्रायः सभी प्रवाही पदार्थों का नाम क्षीर है। यहाँ तक कि गूलर, बरगद, थूहड़ और मदार तक से निकलने वाली सफेद चीज को हम लोग दूध ही कहते हैं। मृणाल-दण्ड पानी मे रहते हैं। उन्हीं के भीतर से क्षीर तुल्य सफेद रस निकलता है। उसी रस को हंस पीते या खाते हैं। अतएव, इस तरह, पानी के भीतर से निकाल कर हंसो का दूध पीना जरूर सिद्ध है। अनुमान होता है कि आरम्भ में इसी प्रकार के नीर-क्षीर के पृथक्त्व से पण्डितों का मतलब रहा होगा। धीरे धीरे लोग वह बात भूल गये। उनकी यह समझ हो गई कि मामूली जल मिश्रित दूध मे हंस जल को पृथक् कर देते हैं और जल को छोड़ कर दूध भर पी जाते हैं।

८—कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता

कवि स्वभाव से ही उच्छृङ्खल होते हैं वे जिस तरफ झुक गये, झुक गये। जी में आया तो राई का पर्वत कर दिया; जी में न आया तो हिमालय की तरफ भी आँख उठाकर न देखा। यह उच्छृङ्खलता या उदासीनता सर्व-साधारण कवियों में तो देखी ही जाती है, आदि कवि तक इससे नहीं बचे। क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक पक्षी को निषाद द्वारा वध किया गया देख जिस कवि-शिरोमणि का हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया, और जिसके मुख से "मानिषाद" इत्यादि सरस्वती सहसा निकल पड़ी वही पर-दुःख-कातर मुनि, रामायण निर्माण करते समय, एक नव-परिणीता दुःखिनी वधू को बिल्कुल ही भूल गया। विपत्ति विधुरा होने पर उसके साथ अल्पादल्पतरा समवेदना तक उसने प्रकट न की—उसकी खबर तक न ली।

वाल्मीकि रामायण का पाठ किंवा पारायण करने वालों को उर्मिला के दर्शन सबसे पहले जनकपुर में सीता, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति के साथ होते हैं। सीता की बात तो जाने ही दीजिए, उनके और उनके जीविताधार रामचन्द्र के चरित्र-चित्रण ही के लिए रामायण की रचना हुई है। माण्डवी और श्रुतिकीर्ति के

विषय में कोई विशेषता नहीं। क्योंकि आग से भी अधिक सन्ताप पैदा करने वाला पति-वियोग उनको हुआ ही नहीं। रही बाल-वियोगिनी देवी उर्मिला, सो उसका चरित्र सर्वथा गेय और आलेख्य होने पर भी, कवि ने उसके साथ अन्याय किया। मुने! इस देवी की इतनी उपेक्षा क्यों? इस सर्वसुखवंचिता के विषय मे इतना पक्षपात कार्पण्य क्यों? क्या इसलिए कि इसका नाम इतना श्रुतिसुखद, इतना मंजुल, इतना मधुर है और तापसजनों का शरीर सदैव शीतातप सहने के कारण कठोर और कर्कश होता है—पर नहीं, आपका काव्य पढ़ने से तो यही जान पड़ता है कि आप कठोरता प्रेमी नहीं। भवतु नाम। हम इस उपेक्षा का एक मात्र कारण भगवती उर्मिला का भाग्यदोष ही समझते हैं। हा हतविधिलसते! परमकारुणिकेन मुनिना वाल्मीकिनापि विस्मृतासि।

हाय वाल्मीकि! जनकपुर मे तुम उर्मिला को सिर्फ एक बार, वैवाहिक-वधू-वेश मे दिखा कर चुप हो बैठे। अयोध्या आने पर ससुराल में इसकी सुधि यदि आपको न आई थी तो न सही पर, क्या लक्ष्मण के वन-प्रयाण-समय मे भी उसके दुःखाश्रुमोचन करना आपको उचित न जँचा? रामचन्द्र के राज्याभिषेक की जब तैयारियाँ हो रही थीं, जब राजान्तःपुर ही क्यों सारा नगर नन्दन-वन बन रहा था, उस समय नवला उर्मिला कितनी खुशी मना रही थी, सो क्या आपने नहीं देखा? अपने पति के परमाराध्य राम को राज्य-सिंहासन पर आसीन देख उर्मिला को कितना आनन्द होता, इसका अनुमान क्या आपने नहीं किया? हाय! वही उर्मिला एक घण्टे बाद, राम-जानकी के साथ निज पति को १४ वर्ष के लिए वन जाते हुए देख, छिन्नमूल शाखा की तरह राज-सदन की एक एकान्त कोठरी में भूमि पर लोटती हुई क्या आपके नयनगोचर नहीं हुई? फिर भी उसके लिए आपकी

"वचने दरिद्रता" ! उर्मिला वैदेही की छोटी बहिन थी। सो उसे बहिन का वियोग सहना पड़ा और प्राणाधार पति का भी वियोग सहना पड़ा ! पर इतनी घोर दुःखिनी होने पर भी आपने दया न दिखाई। चलते समय लक्ष्मण को उसे एक बार आँख भर देख भी न लेने दिया ! जिस दिन राम और लक्ष्मण, सीतादेवी के साथ, चलने लगे—जिस दिन उन्होंने अपने पुरत्याग से अयोध्या नगरी को अन्धकार में, नगरवासियों को दुःखोदधि में और पिता को मृत्यु-मुख में निपतित किया, उस दिन भी आपको उर्मिला याद न आई। उसकी क्या दशा थी, वह कहाँ पड़ी थी, सो कुछ भी आपने न सोचा; इतनी उपेक्षा !

लक्ष्मण ने अकृत्रिम भ्रातृस्नेह के कारण बड़े भाई का साथ दिया। उन्होंने राज-पाट छोड़ कर अपना शरीर रामचन्द्र को अर्पण किया। यह बहुत बड़ी बात की। पर उर्मिला ने इससे भी बढ़कर आत्मोत्सर्ग किया। उसने अपनी आत्मा की अपेक्षा भी अधिक प्यारा अपना पति राम-जानकी को दे डाला और यह आत्मसुखोत्कर्ष उसने तब किया जब उसे ब्याह कर आये हुए कुछ ही समय हुआ था। उसने अपने सांसारिक सुख के सबसे अच्छे अंश से हाथ धो डाला। जो सुख विवाहोत्तर उसे मिलता उसकी बराबरी १४ वर्ष पति वियोग के बाद का सुख कभी नहीं कर सकता। नवोढ़त्व को प्राप्त होते ही जिस उर्मिला ने, रामचन्द्र और जानकी के लिए, अपने सुख सर्वस्व पर पानी डाल दिया उसी के लिए अन्तर्दर्शी आदि कवि के शब्द-भण्डार में दरिद्रता !

पति-प्रेम और पति-पूजा की शिक्षा सीतादेवी को जहाँ मिली थी वहीं उर्मिला को भी मिली थी। सीतादेवी की सम्मति

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते।
पिय बिनु तियहिं तरनि ते ताते॥

उर्मिला की क्या यह भावना न थी? जरूर थी। दोनों एक ही घर की थीं। उर्मिला भी पतिपरायणता-धर्म को अच्छी तरह जानती थी। पर, उसने लक्ष्मण के साथ वन-गमन की हठ जान-बूझ कर, नहीं की। यदि वह भी साथ जाने को तैयार होती, तो लक्ष्मण को अपने अग्रज राम के साथ उसे ले जाने में सङ्कोच होता, और उर्मिला के कारण लक्ष्मण अपने उस आराध्य-युग्म की सेवा भी अच्छी तरह न कर सकते। यही सोच कर उर्मिला ने सीता का अनुकरण नहीं किया। यह बात उसके चरित्र की बहुत बड़ी महत्ता की बोधक है। वाल्मीकि को ऐसी उच्चाशय रमणी का विस्मरण होते देख किस कविता-मर्मज्ञ को आन्तरिक वेदना न होगी?

तुलसीदासजी ने भी उर्मिला पर अन्याय किया है। आपने इस विषय में आदि कवि का ही अनुकरण किया है। "नाना-पुराणनिगमागमसम्मत" लेकर जब रामचरित मानस की रचना करने की घोषणा की थी, तब यहाँ पर आदि काव्य को ही वचनों का आधार मानने की वैसी कोई जरूरत न थी। आपने भी चलते वक्त लक्ष्मण को उर्मिला से नहीं मिलने दिया। माता से मिलने के बाद, झट कह दिया—

गये लषण जहँ जानकिनाथा।

आपके इष्टदेव के अनन्य सेवक "लषण" पर इतनी सख्ती क्यों? अपने कमण्डलु के करुणावारि का एक भी बूँद आपने उर्मिला के लिए न रक्खा। सारा का सारा कमण्डलु सीता को समर्पण कर दिया! एक ही चौपाई में उर्मिला की दशा का वर्णन कर देते। अथवा उसी के मुँह से कुछ कहलाते। पाठक सुन तो लेते कि राम-जानकी के बनवास और अपने पति के वियोग के सम्बन्ध में क्या-क्या भावनाएँ उसके कोमल हृदय में

उत्पन्न हुई थीं। उर्मिला को जनकपुर से साकेत पहुँचा कर उसे एकदम ही भूल जाना अच्छा नहीं हुआ।

हाँ, भवभूति ने इस विषय में कुछ कृपा की है। राम-लक्ष्मण और जानकी के वन से लौट आने पर भवभूति को बेचारी उर्मिला एक बार याद आ गई है। चित्र-फलक पर उर्मिला को देखकर सीता ने लक्ष्मण से पूछा—"इयमप्यपराका" अर्थात् लक्ष्मण कौन है? इस प्रकार देवर से पूछना कौतुक से खाली नहीं। इसमें सरसता है। लक्ष्मण इस बात को समझ गये। वे कुछ लज्जित होकर मन ही मन कहने लगे—उर्मिला को सीता देवी पूछ रही हैं। उन्होंने सीता के प्रश्न का उत्तर दिये बिना ही उर्मिला के चित्र पर हाथ रख दिया। उनके हाथ से वह ढक गया। कैसे खेद की बात है कि उर्मिला का उज्ज्वल चरित्र-चित्र कवियों के द्वारा भी आज तक इसी तरह ढकता आया।

६—नल का दुस्तर दूत-कार्य

प्राचीन समय में भारत का अधिकतर अंश जिसे आजकल कमायूँ कहते हैं निषध देश के नाम से प्रसिद्ध था। अलका उसकी राजधानी थी। उसमें वरसेन का पुत्र नल नामक एक महाप्रतापी राजा राज्य करता था।

नल, एक दिन, मृगया के लिये राजधानी से बाहर निकला। आखेट करते-करते वह अकेला दूर तक अरण्य में निकल गया। वहाँ उसने एक बड़ा मनोहर जलाशय देखा। उसके तट पर एक अलौकिक रूपरङ्गधारी हंस, थक जाने के कारण, आँखें बन्द किये, बैठा आराम कर रहा था। नल की दृष्टि उस पर पड़ी। चुपचाप, दबे पैरों, जाकर राजा ने उसे पकड़ लिया। हंस का विचरण-स्वातंत्र्य जाता रहा पराधीनता के दुःख और अपनी स्त्री तथा माता के वियोग-जन्य ताप की चिन्ता से वह व्याकुल हो उठा। उसने बहुत विलाप किया। मुक्ति-दान देने के लिये राजा से उसने प्रार्थना भी की और एक तुच्छ पक्षी पर अनुचित बल प्रयोग करने के लिये उसकी भर्त्सना भी की। राजा को दया आई। उसने उस हंस को छोड़ दिया।

हंस नल पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा—मैं एक असाधारण पक्षी हूँ। आपने मुझे छोड़ दिया, इसका मैं प्रत्युपकार करना चाहता हूँ। आप अभी तक अविवाहित हैं। अतएव

आप ही के सदृश अलौकिक रूप-लावण्यवती सुन्दरी दमयन्ती को आप पर अनुरक्त कराने की मैं चेष्टा करूँगा। आपका कल्याण हो। मैं चला। अपने उद्योग की सफलता का संवाद सुनाने के लिए शीघ्र ही मैं लौट कर आपके दर्शन करूँगा।

नल से विदा होकर हंस ने विदर्भ-देश—आधुनिक बरार—की राह ली। वहाँ के राजा भीम की कन्या दमयन्ती उस समय त्रिभुवन में एक ही सुन्दरी थी। उसकी रूप राशि का वर्णन करके हंस ने नल को दमयन्ती पर अनुरक्त किया था। अब उसे दमयन्ती को नल पर अनुरक्त करना था। आकाश मार्ग से हंस शीघ्र ही विदर्भदेश की राजधानी कुण्डिनपुर पहुँचा। दमयन्ती उस समय अपने क्रीड़ा-स्थान में; सखियों के साथ खेल रही थी। हंस मनुष्य की बोली बोलना जानता था। एकान्त में नल के सौन्दर्य बल-वैभव और पराक्रम आदि का वर्णन दमयन्ती को सुनाकर हंस ने उसे नल के प्रेम-पास में फाँस लिया। यही नहीं, उसने दमयन्ती से यह वचन तक ले लिया कि चाहे मर जाऊँ पर नल को छोड़ कर और किसी से विवाह न करूँगी।

यह सुख समाचार नल को सुना कर हंस अपने आवास को चला गया। इधर नल की चिन्ता ने दमयन्ती को अतिशय सन्तप्त कर दिया। एक दिन विरह-व्यथा से अत्यन्त व्यथित होकर वह मूर्च्छित हो गई! पिता भीम उसके पास दौड़े आये। कन्या की दशा देख कर उसके सन्ताप का कारण वे ताड़ गये। उन्होंने शीघ्र ही उसका विवाह कर डालना चाहा। स्वयंवर की तिथि निश्चित हुई।

स्वयंवर में शरीक होने के लिए देश-देश के नरेश चले। नल ने भी अलका से कुण्डिनपुर के लिए प्रस्थान किया। उधर नारद से स्वयंवर का समाचार और भैमी का सौन्दर्य-वर्णन सुन कर उसे पाने की इच्छा से, इन्द्र ने भी देवलोक से प्रस्थान किया।

९—नल का दुस्तर दूत-कार्य

प्राचीन समय में भारत का अधिकतर अंश जिसे आजकल कमायूँ कहते हैं निषध देश के नाम से प्रसिद्ध था। अलका उसकी राजधानी थी। उसमें वीरसेन का पुत्र नल नामक एक महाप्रतापी राजा राज्य करता था।

नल, एक दिन, मृगया के लिये राजधानी से बाहर निकला। आखेट करते-करते वह अकेला दूर तक अरण्य में निकल गया। वहाँ उसने एक बड़ा मनोहर जलाशय देखा। उसके तट पर एक अलौकिक रूपरङ्गधारी हंस, थक जाने के कारण, आँखे बन्द किये, बैठा आराम कर रहा था। नल की दृष्टि उस पर पड़ी। चुपचाप, दबे पैरों, जाकर राजा ने उसे पकड़ लिया। हंस का विचरण-स्वातंत्र्य जाता रहा पराधीनता के दुख और अपनी स्त्री तथा माता के वियोग-जन्य ताप की चिन्ता से वह व्याकुल हो उठा। उसने बहुत विलाप किया। मुक्ति-दान देने के लिये राजा से उसने प्रार्थना भी की और एक तुच्छ पक्षी पर अनुचित बल प्रयोग करने के लिये उसकी भर्त्सना भी की। राजा को दया आई। उसने उस हंस को छोड़ दिया।

हंस नल पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा—मैं एक असाधारण पक्षी हूँ। आपने मुझे छोड़ दिया, इसका मैं प्रत्युपकार करना चाहता हूँ। आप अभी तक अविवाहित हैं। अतएव

आप ही के सदृश अलौकिक रूप-लावण्यवती सुन्दरी दमयन्ती को आप पर अनुरक्त कराने की मैं चेष्टा करूँगा। आपका कल्याण हो। मैं चला। अपने उद्योग की सफलता का संवाद सुनाने के लिए शीघ्र ही मैं लौट कर आपके दर्शन करूँगा।

नल से विदा होकर हंस ने विदर्भ-देश—आधुनिक बरार—की राह ली। वहाँ के राजा भीम की कन्या दमयन्ती उस समय त्रिभुवन में एक ही सुन्दरी थी। उसकी रूप राशि का वर्णन करके हंस ने नल को दमयन्ती पर अनुरक्त किया था। अब उसे दमयन्ती को नल पर अनुरक्त करना था। आकाश मार्ग से हंस शीघ्र ही विदर्भदेश की राजधानी कुण्डिनपुर पहुँचा। दमयन्ती उस समय अपने क्रीड़ा-स्थान में; सखियों के साथ खेल रही थी। हंस मनुष्य की बोली बोलना जानता था। एकान्त में नल के सौन्दर्य बल-वैभव और पराक्रम आदि का वर्णन दमयन्ती को सुनाकर हंस ने उसे नल के प्रेम-पास में फाँस लिया। यही नहीं, उसने दमयन्ती से यह वचन तक ले लिया कि चाहे मर जाऊँ पर नल को छोड़ कर और किसी से विवाह न करूँगी।

यह शुभ समाचार नल को सुना कर हंस अपने आवास को चला गया। इधर नल की चिन्ता ने दमयन्ती को अतिशय सन्तप्त कर दिया। एक दिन विरह-व्यथा से अत्यन्त व्यथित होकर वह मूर्च्छित हो गई! पिता भी उसके पास दौड़े आये। कन्या की दशा देख कर उसके सन्ताप का कारण वे ताड़ गये। उन्होंने शीघ्र ही उसका विवाह कर डालना चाहा। स्वयंवर की तिथि निश्चित हुई।

स्वयंवर में शरीक होने के लिए देश-देश के नरेश चले। नल ने भी अलका से कुण्डिनपुर के लिए प्रस्थान किया। उधर नारद से स्वयंवर का समाचार और भैमी का सौन्दर्य-वर्णन सुन कर उसे पाने की इच्छा से. इन्द्र ने भी देवलोक से प्रस्थान किया।

९—नल का दुस्तर दूत-कार्य

प्राचीन समय में भारत का अधिकतर अंश जिसे आजकल कमायूँ कहते हैं निषध देश के नाम से प्रसिद्ध था। अलक उसकी राजधानी थी। उसमें वरसेन का पुत्र नल नामक एक महाप्रतापी राजा राज्य करता था।

नल, एक दिन, मृगया के लिये राजधानी से बाहर निकला। आखेट करते-करते वह अकेला दूर तक अरण्य में निकल गया। वहाँ उसने एक बड़ा मनोहर जलाशय देखा। उसके तट पर एक अलौकिक रूपरङ्गधारी हंस, थक जाने के कारण, आँखें बन्द किये, बैठा आराम कर रहा था। नल की दृष्टि उस पर पड़ी। चुपचाप, दबे पैरों, जाकर राजा ने उसे पकड़ लिया। हंस का विचरण-स्वातंत्र्य जाता रहा पराधीनता के दुःख और अपनी स्त्री तथा माता के वियोग-जन्य ताप की चिन्ता से वह व्याकुल हो उठा। उसने बहुत विलाप किया। मुक्ति-दान देने के लिये राजा से उसने प्रार्थना भी की और एक तुच्छ पक्षी पर अनुचित बल प्रयोग करने के लिये उसकी भर्त्सना भी की। राजा को दया आई। उसने उस हंस को छोड़ दिया।

हंस नल पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा—मैं एक असाधारण पक्षी हूँ। आपने मुझे छोड़ दिया, इसका मैं प्रत्युपकार करना चाहता हूँ। आप अभी तक अविवाहित हैं। अतएव

आप ही के सदृश अलौकिक रूप-लावण्यवती सुन्दरी दमयन्ती को आप पर अनुरक्त कराने की मैं चेष्टा करूँगा। आपका कल्याण हो। मैं चला। अपने उद्योग की सफलता का संवाद सुनाने के लिए शीघ्र ही मैं लौट कर आपके दर्शन करूँगा।

नल से विदा होकर हंस ने विदर्भ-देश—आधुनिक बरार—की राह ली। वहाँ के राजा भीम की कन्या दमयन्ती उस समय त्रिभुवन में एक ही सुन्दरी थी। उसकी रूप राशि का वर्णन करके हंस ने नल को दमयन्ती पर अनुरक्त किया था। अब उसे दमयन्ती को नल पर अनुरक्त करना था। आकाश मार्ग से हंस शीघ्र ही विदर्भदेश की राजधानी कुण्डिनपुर पहुँचा। दमयन्ती उस समय अपने क्रीड़ा-स्थान में; सखियों के साथ खेल रही थी। हंस मनुष्य की बोली बोलना जानता था। एकान्त में नल के सौन्दर्य बल-वैभव और पराक्रम आदि का वर्णन दमयन्ती को सुनाकर हंस ने उसे नल के प्रेम-पास में फाँस लिया। यही नहीं, उसने दमयन्ती से यह वचन तक ले लिया कि चाहे मर जाऊँ पर नल को छोड़ कर और किसी से विवाह न करूँगी।

यह शुभ समाचार नल को सुना कर हंस अपने आवास को चला गया। इधर नल की चिन्ता ने दमयन्ती को अतिशय सन्तप्त कर दिया। एक दिन विरह-व्यथा से अत्यन्त व्यथित होकर वह मूर्च्छित हो गई! पिता भी। उसके पास दौड़े आये। कन्या की दशा देख कर उसके सन्ताप का कारण वे ताड़ गये। उन्होंने शीघ्र ही उसका विवाह कर डालना चाहा। स्वयंवर की तिथि निश्चित हुई।

स्वयंवर में शरीक होने के लिए देश-देश के नरेश चले। नल ने भी अलका से कुण्डिनपुर के लिए प्रस्थान किया। उधर नारद से स्वयंवर का समाचार और भैमी का सौन्दर्य-वर्णन सुन कर उसे पाने की इच्छा से, इन्द्र ने भी देवलोक से प्रस्थान किया।

उसके पीछे यम, वरुण और अग्नि भी चले। मार्ग में उन चारों की भेंट हुई। नल की भुवनातिव्यापिनी सुन्दरता देख कर उन देवताओं के होश उड़ गये। उन्होंने इस बात को निश्चित समझा कि नल के होते दमयन्ती कदापि उनके कण्ठ में वरमाला न पहनायेगी। अतएव, कपट-कौशल की ठहरी। नल की दान-शूरता आदि की प्रशंसा करके इन्द्र महाराज नल के याचक बने। आपने नल से यह याञ्चा की कि तुम हमारे दूत बन कर दमयन्ती के पास जाओ और हमारी तरफ से ऐसी वकालत करो जिसमें वह हमीं चारों में किसी एक को अपना पति बनाये।

इस प्रार्थना पर नल को महादुःख हुआ। उसे क्रोध भी हो आया। उसने इन्द्रादि के कार्य की बड़ी निन्दा की, अपना सच्चा हाल भी उसने कह सुनाया। सङ्कल्प-द्वारा मुझे ही दमयन्ती अपना पति बना चुकी है यह भी नल ने साफ़-साफ़ कह दिया। भीम-भूपाल के अन्तःपुर में दूत बनकर जाने की असम्भवता का भी नल ने उल्लेख किया। पर इन्द्र ने एक न मानी। उस समय उसे उचित-अनुचित का कुछ भी ध्यान न रहा। फिर उसने नल की चाटुकारिता आरम्भ की। आजिज आकर नल ने इन्द्रादि देवताओं का दूत बनकर दमयन्ती के पास जाना स्वीकार कर लिया। इन्द्र ने नल को एक ऐसी विद्या सिखला दी जिसके प्रभाव से, इच्छा करने पर, वह और लोगों की दृष्टि से अदृश्य हो सके, पर वह सबको देखता रहे। नल, इस तरह, इन्द्र दूत बनकर कुण्डिनपुर पहुँचा। उधर पूर्वोक्त चारों दिक्पालों ने पृथक्-पृथक् अपनी दूतियाँ भी दमयन्ती के पास, उसे अपनी ओर अनुरक्त करने के लिये भेजीं। इतने छल-कपट और प्रयत्न को काफ़ी न समझ कर उन्होंने दमयन्ती के पिता को बहुत कुछ घूस भी दी, सबसे अद्भुत-अद्भुत उपायन राजा भीम को भेजे।

नल ने अपना रथ, अपने अनुचर और अपना असबाब आदि कुण्डिनपुर के बाहर ही छोड़ा। दिक्पालों की स्वार्थ-परता और निर्लज्जता को धिक्कारते हुए उसने नगर में प्रवेश किया। जी कड़ा करके वह राज-प्रासाद के पास पहुँचा। धीरे-धीरे वह उसके भीतर घुसा। इन्द्रदत्त तिरस्कारिणी विद्या के प्रभाव से उसे किसी ने न देखा। घूमते-घामते वह दमयन्ती के महलों में दाखिल हुआ। कहीं किसी कामिनी के शरीर का स्पर्श होने से वह झिझक उठा। कहीं किसी का कोई अनावृत अङ्ग देखकर उसने आँखें मूँद लीं। कहीं किसी को अपने स्थिति-स्थान की ओर मुख किये देख वह डर उठा कि कहीं मैं देख तो नहीं लिया गया। इस प्रकार अन्तःपुर की सैर करते हुए वह दमयन्ती के सम्मुख उपस्थित हुआ। उसके रूप माधुर्य की शोभा देखते वह देर तक वहाँ खड़ा रहा, उसने सबको देखा; उसे कोई न देख सका। तदनन्तर, समय अनुकूल देख; अङ्गीकृत दूतत्व निर्वाह के इरादे से, वह प्रकट हो गया। इसके बाद वहाँ जो कुछ हुआ उसके वर्णन में श्री हर्ष ने, अपने नैषध-चरित में अपूर्व कवित्व-कौशल दिखाया है। उसी का भावार्थ, संक्षेप में, आगे दिया जाता है। पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि नल और दमयन्ती दोनों, पहले ही से; एक दूसरे पर अनुरक्त थे। तिस पर भी नल ने याचक इन्द्र की याञ्चा को विफल कर देना अपने वंश के विरुद्ध समझा। अतएव उसने दूत बनना स्वीकार कर लिया। नल के चरित्रादर्श, साहस और स्वार्थ-त्याग का यह अद्भुत उदाहरण है। अब, इस समय यह दोनों प्रेमी एक दूसरे के सामने हैं। नल से कोई बात छिपी नहीं, पर दमयन्ती को इसका अत्यल्प भी ज्ञान नहीं कि यह कौन है। इससे इस घटना की महत्ता बहुत बढ़ गई है। इसमें एक अनिर्वचनीय रस उत्पन्न हो गया है। अस्तु।

नल के अकस्मात् प्रकट होने पर दमयन्ती और उसकी सहेलियों ने उसे इस अनिमेष-भाव से देखा मानों वे उसे दृष्टिद्वारा पी जाना चाहती हैं। नल को इस तरह कुछ देर तक देख चुकने पर, किसी-किसी ने उसके रूप-लावण्य के समुद्र में गोता लगाया और किसी-किसी ने उसे प्रत्यक्ष मन्मथ समझ कर विस्मय की पराकाष्ठा के पार प्रयाण किया।

किसी को यह बात पूछने का साहस न हुआ कि—आप कौन हैं और कहाँ से आये हैं। नल के अपूर्व रूप और आकस्मिक प्रादुर्भाव ने उन्हें अप्रतिभ कर दिया। उनसे उस समय केवल यही बन पड़ा कि, अभ्युत्थान की वांछा से, अपने-अपने आसनों से वे उठ खड़ी हुईं। नल के सन्दर्शन से दमयन्ती को वैसा ही परमानन्द प्राप्त हुआ जैसा कि वर्षा-काल आने पर पर्वत से निकली हुई नदी को मेघों के धारासार से प्राप्त होता है।

नल के प्रत्येक अङ्ग की सुन्दरता का मन ही मन अभिनन्दन करके दमयन्ती के हृदय में जिन भावों का उदय हुआ उनका वर्णन करने में केवल महाकवि ही समर्थ हो सकते हैं। दमयन्ती ने देखा कि उसकी सारी सहेलियाँ कुण्ठित-कण्ठ हो रही हैं। उनके मुख-मण्डलों पर आतङ्क छाया हुआ है। अतएव वे दमयन्ती की तरफ से इस आगन्तुक पुरुष से कुशल-प्रश्न करने में असमर्थ हैं। लाचार, नम्र मुखी दमयन्ती स्वयं ही नल से इस प्रकार गद्गद् भाव-पूर्ण वाणी बोली—

"आचारवेत्ता" महात्माओं ने यह नियम कर दिया है कि अतिथि आने पर यदि और कुछ न बन पड़े तो प्रेम-पूर्ण अक्षरों की रस-धारा ही को मधुपर्क बनाना चाहिए। अभ्यागत की तृप्ति के लिए अपनी आत्मा को भी तृणवत् समझना चाहिए और यदि, उस समय पाद्य और अर्घ्य के लिए जल न मिल सके तो आनन्दाश्रुओं ही से उस विधि का सम्पादन करना चाहिए

आपका दर्शन होते ही मैं अपना जो आसन छोड़ कर खड़ी हो गई वह यथार्थ में आपके बैठने योग्य नहीं, तथापि मेरी प्रार्थना पर बहुत नहीं तो क्षण ही भर के लिए, कृपा-पूर्वक आप उसे अलंकृत करें। यदि आपकी इच्छा और कहीं जाने की हो तो भी, मेरे अनुरोध से, आप मेरी यह विनती मान लेने की उदारता दिखावें। आपके ये पद-द्वय शिरीषकलिकाओं की मृदुता का भी अभिमान चूर्ण करने वाले हैं। यह तो आप बताइए कि आपका निर्दय हृदय कब तक इन्हें, इस तरह खड़े रख कर, क्लेशित करना चाहता है। वसन्त बीत जाने पर जो दशा उपवनों की होती है वही दशा आपने किस देश की कर डाली? आपके मुख से उच्चारण किए जाने के कारण कृतार्थ होने वाले आपके नाम के अक्षर सुनने के लिए मैं उत्सुक हो रही हूँ। अपने दर्शनों से सारे संसार को तृप्त करने वाले आप जैसे पियूषमुख (चन्द्रमा) को उत्पन्न करके किस वंश ने समुद्र के साथ स्पर्द्धा करने का बीड़ा उठाया है? उस वंश का यह उद्योग सर्वथा स्तुत्य और उचित है। इस दुष्प्रवेश्य अन्तःपुर में आपके प्रवेश को मैं महासागर को पार कर जाना समझती हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि इतने बड़े साहस का कारण क्या है और इसका फल भी क्या हो सकता है? आपके इस सुरक्षित अन्तःपुर-प्रवेश को मैं अपने नेत्रों के कृतपुण्य का फल समझती हूँ। आपकी आकृति सर्वथा भुवन-मोहिनी है। द्वारपालों को अन्धा कर डालने की शक्ति भी आप में बड़ी ही अद्भुत है। आपकी शरीर कान्ति भी महा अलौकिक है। इससे जान पड़ता है कि आप कोई दिव्य पुरुष अर्थात् देवता हैं, मन्मथ आप नहीं हो सकते; क्योंकि वह मूर्तिहीन है। अश्विनीकुमार भी आप : सकते, क्योंकि वे अभी अद्वितीय नहीं देखे गए। यदि आप मनुष्य हैं तो यह पृथ्वी कृतार्थ है। यदि आप देवता हैं तो देवलोक

की प्रशंसा नहीं हो सकती। यदि आपने अपने जन्म से ना वंश को अलंकृत किया है तो नीचे, अर्थात् पाताल में, होने भी वह सब लोकों के ऊपर समझा जाने योग्य है। इस भूमण्ड में किस मनुष्य ने इतना अधिक पुण्य सम्पादन किया है जि कृतकृत्य करने के उद्देश्य से आप अपने पैरों को चलने का क दे रहे हैं? इस प्रकार के न मालूम कितने सन्देह मेरे चित्त उत्पन्न हो रहे हैं। अतएव आप अधिक देर तक मुझे सन्देह साग में न डुबाइये। बतला दीजिए कि किस धन्य के आप अति हैं। आपके सुन्दर रूप का दर्शन करके मेरी दृष्टि ने तो अप जन्म का फल पा लिया। यदि आप अपने मुख से अब कु कहने की कृपा करें तो मेरे कानों को भी सुधासार के आस्वाद का आनन्द मिल जाय।"

अपनी प्रियतमा के मुख से इस तरह शहद के समान मीठ वाणी सुनने से नल का अजीब हाल हुआ। दमयन्ती के ओष्ठ बन्धूकरूपी धन्वा से, वाणी के बहाने निकली हुई मन्मथ के पञ्चबाणी (पाँच बाण) कानों की राह में नल के हृदय के भीतर धँस गई। दमयन्ती के मुख से ऐसे मधुर और ऐसे प्यारे वचन सुनकर नल, सुधा-समुद्र में, शरीरान्तवर्त्तिनी मज्जा पर्यन्त निमज्जित हो गया। स्तुति ऐसी चीज है जो शत्रु के भी मुँह से मीठी मालूम होती है। फिर प्राणोपम प्रिय के मुँह से उसके मिठास का कहना ही क्या है।

नल ने स्वयं दमयन्ती के आसन पर बैठना तो उचित न समझा। पर दमयन्ती की प्रार्थना पर उसकी सखी के आसन पर वह बैठ गया। इस समय नल के हृद्गत धैर्य्य और मनो-भाव में युद्ध ठन गया। जीत धैर्य्य ही की हुई। मनोभाव ने हार खाई। उसकी एक न चली। विकारों की उत्पादक प्रबल

सामग्री के उपस्थित होने पर भी यदि महात्माओं का मन कलुषित हो जाय तो फिर वे महात्मा कैसे—

दमयन्ती ने नल से जो प्रश्न किये उनमें से एक को छोड़कर और सब प्रश्न नल हजम कर गये। आपने अपनी कथा का आरम्भ इस प्रकार किया—

मैं दिशाओं के अधिपतियों की सभा से तुम्हारे ही पास अतिथि होकर आया हूँ। साथ ही अपने प्रभुओं के सन्देश, बड़े आदर के साथ, अपने हृदय में प्राणों की तरह धारण करके लाया हूँ। मेरा आतिथ्य-सत्कार हो चुका। बस अब और अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं। बैठ क्यों नहीं जातीं? आसन क्यों छोड़ दिया? दूत बनकर मैं जिस काम के लिए आया हूँ उसे यदि तुम सफल कर दोगी तो मैं उसी को अपना बहुत बड़ा आतिथ्य समझूँगा। हे कल्याणि! चित्त तो तुम्हारा प्रसन्न है? शरीर तो सुखी है? विलम्ब करने का यह समय नहीं। इससे जो कुछ मैं निवेदन करने जाता हूँ उसे कृपा करके सुनो। मेरा निवेदन यह है।

जब से तुम्हारी कुमारावस्था का आरम्भ हुआ तभी से तुम्हारे गुणों ने इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर के हृदय पर अधिकार कर लिया है। तुम्हारे शैशव और यौवन की सन्धि से सम्बन्ध रखने वाली बातों का विचार करके इन दिक्पालों का चित्त प्रतिदिन अधिकाधिक खिन्न हो रहा है। दो राजों के राज्य में जो दशा प्रजा की होती है वही दशा इस समय देवताओं की हो रही है। पञ्चशायकरूपी चोर ने इनके धैर्य्यरूपी सारे धन का अपहरण कर लिया है।

मैं तुम्हारे इन्द्र का क्या हाल बयान करूँ। सूर्य्य जिस समय पूर्व दिशा में उदित होता है उस समय उसका बिम्ब वैसा ही अरुण होता है जैसा कि चन्द्रमा का। तुम्हारे वियोग में महेन्द्र

सूर्य्य को भी, सदृशता के कारण, चन्द्रमा समझ कर अत्यन्त क्रोध-पूर्ण दृष्टि से देखता है। किस का अपराध और किस पर क्रोध ! परन्तु वह बेचारा करे क्या ? वह इस समय बिलकुल ही विवेकहीन हो रहा है। केवल तीन नेत्र-धारी ने मनोज महोदय के साथ जो सुलूक किया था उसी को वह अब तक नहीं सँभाल सका। मेरी समझ में नहीं आता कि यदि अब सहस्रनेत्रधारी उस पर रुष्ट हुआ तो उस बेचारे की क्या दशा होगी ? मनसिज के शरीरकृत अपराधों से शचीपति सन्तप्त हो रहा है, कोकिल का तो वचनकृत अपराध भी उसे सहन नहीं होता। इस डर से कि कहीं पिक का शब्द कान में न पड़ जाय वह अपने नन्दनवन मे जाकर बैठने का साहस भी नहीं कर सकता। और कहाँ तक कहूँ, शङ्कर के जटाजूट वाले बाल-चन्द्रमा को अपना अपकार-कर्ता [illegible]

है। [illegible]

कल्प [illegible]

इस समय वे स्वयं ही महादरिद्री हो रहे हैं। इन्द्र के शरीर का सन्ताप दूर करने के लिए उनके पत्तों की शय्यायें बना डाली गई हैं। अतएव वे सब बेपत्ते के दरिद्र-दीन खड़े हुए हैं। तुम शायद यह शङ्का करो कि क्या अमरपुर में कोई ऐसा पण्डित नहीं जो अपने सदुपदेश से इन्द्र को धैर्य्य प्रदान करे। शङ्का तुम्हारी निर्मूल नहीं। परन्तु उपदेश सुने कौन ? रतिपति के धन्वा की अविरत टङ्कार ने इन्द्र को दोनों कानों से बहरा कर डाला है। अतएव महेन्द्र की मोह-निद्रा दूर करने वाले सुर-गुरु बृहस्पति की धैर्य्य-विधायक वाणी सर्वथा व्यर्थ हो रही है।

अष्टमूर्ति शङ्कर का जो देदीप्यमान शरीर है और याचक जिसकी नित्य उपासना करते हैं उस अग्नि का भी बुरा हाल है। कुसुम सायक ने उसे भी तुम्हारा दास बनने की आज्ञा दे दी है।

दूसरों को जलाते समय अग्नि अब तक यह न जानता था कि उन्हें कितना ताप होता है—उन्हें कितनी जलन होती है। परन्तु तुम्हारी सहायता से अग्नि को जलाकर इस समय अनङ्ग उसे यहाँ तक विनीत और विनम्र बना रहा है कि भविष्यत् में दूसरों को सन्ताप देने का उसे कदापि साहस न होगा। क्योंकि, अब उसे जलने का दुःख अच्छी तरह ज्ञात हो गया है। शङ्कर के तीसरे नेत्र में वास करने वाले पावक ने मनसिज को एक बार जला कर भस्म कर दिया था। इस बात को तुमने भी पुराणों में सुना होगा। सो वह पुराना बदला लेने के लिए इस समय मनोज ने तुम्हारे नेत्रों का सहारा लिया है। उन्हीं के भीतर सुरक्षित बैठा हुआ वह अग्नि को जला रहा है। उसका यह कठोर कार्य बहुत दिन से जारी है। तथापि वह यह समझ रहा है कि अभी तक उस वैर-भाव का काफी बदला नहीं हुआ। तुम्हारे कारण कुसुमायुध के शरों से अग्नि यहाँ तक पीड़ित हो गया है कि अपने भक्तों के द्वारा चढ़ाये गये कुसुमों से भी डर कर वह कोसों दूर भागता है।

सरोरुहों का सखा सूर्य जिससे पुत्रवान है और चन्दन के सुवास से सुगन्धित दक्षिण दिशा जिसकी प्रियतमा है उस वैवस्वत यम ने भी तुम्हारे निमित्त कामाग्नि-कुण्ड में अपने धैर्य की आहुति दे डाली है। वह भी इस समय बड़ी ही विषमावस्था को प्राप्त है। शीतपार के लिए मलयाचल से लाये गये, कोमल पल्लव उसके शरीर-स्पर्श से यद्यपि बेतरह झुलस जाते हैं तथापि मलय इस आपत्तिकाल में भी अपने प्रभु यम की सेवा नहीं छोड़ता। कारण यह कि वह उसी दिशा का—उसी के राज्य का वासी है। अतएव यम के शरीर के साथ मलयाद्रि भी अपने नवल-पल्लव और चन्दनादि जलाने का सन्ताप सहन कर रहा है।

रहा वरुण, सो उसकी भी दशा अच्छी नहीं। महासागर युग युग से वड़वाग्नि की ज्वाला सहन करता चला आ रहा है। वह उसे विशेष दाहक नहीं जान पड़ती। परन्तु अपने ही अधिपति वरुण का स्मराग्नि-सन्तप्त शरीर जल के भीतर धारण करने में वह इस समय असमर्थ हो रहा है।

ये चारों देवता तुम्हारे नगर के बाहर पास ही ठहरे हुए हैं। उन्हीं की आज्ञा से मैं तुम्हारी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। जो कुछ मैंने तुमसे निवेदन किया वह उन्हीं का सन्देश है। अब कृपा करके बतलाओ कि उन्हें अपनी इच्छा पूर्ति के लिए कब तक ठहरना पड़ेगा। उनके जीवन संशयापन्न हैं। अतएव जहाँ तक हो सके तुम्हें शीघ्रता करनी चाहिए। तुम प्रतिदिन इन देवताओं की पूजा कमल के फूलों से, करती हो। परन्तु इस तरह की पूजा ये नहीं चाहते। वह इनको प्रीतिकर नहीं। तुम्हें प्रसन्न करने के लिए ये तो स्वयं ही अपना मस्तक तुम्हारे सामने झुका रहे हैं। अतएव अपने चरण-कमलों से तुम इनकी पूजा करो; प्राकृतिक कमल-फूलों से नहीं। अब क्या आज्ञा है?

नल के मुख से दिक्पालों का सन्देश सुनाते समय दमयन्ती की भौंहें टेढ़ी और आँखें लाल हो रही थीं। आँखें और भौंहों के विकार-चिह्न से वह यह सूचित कर रही थी कि देवताओं से सम्बन्ध रखने वाली अपनी अनिच्छा को साफ-साफ कहकर प्रकट करने के लिए मैं उत्सुक हो रही हूँ। यहाँ पर पाठक यह कह सकते हैं कि नल के सन्देश-वाक्य यदि भैमी को इतने अप्रिय मालूम होते थे तो उसने नल को बीच ही में क्यों न रोक दिया? क्यों उसकी सारी बातें वह अन्त तक सुनती रही? इसका कारण यह न था कि दमयन्ती उस सन्देश को कोई गौरव की चीज समझती थी। नहीं, वह सन्देश उसकी दृष्टि में बिलकुल ही तुच्छ था। नल को जो उसने बीच में ही नहीं रोका

या, इसका कारण यह था कि नल के सन्देश-कथन का ढंग
हुत ही अनोखा था। उसकी उक्तियाँ बड़ी ही मनोहारिणी
ीं। उसकी वाणी बहुत ही रसवती थी। इसी से उक्ति-श्रवण के
ोभ में पड़कर, अन्त तक दमयन्ती उसकी बातें सुनती रही।
ुना तो उसने सब, पर उसका कुछ भी असर उस पर न हुआ।
ल के कथित सन्देश को बिलकुल ही अनसुना-सा करके उसने
स प्रकार कहना आरम्भ किया—

आप तो बड़े ही विचित्र जीव मालूम होते हैं। मैंने आपसे आपका नाम पूछा; आपका वंश पूछा; आपका स्थान पूछा। पर मेरे इन प्रश्नों का कुछ भी उत्तर न देकर, न मालूम आपने क्या क्या अनाप-शनाप कह डाला। मुझे अपने कई प्रश्नों का उत्तर आपसे पाना है। इस कारण, इस विषय में आप मेरे ऋणी हैं। क्या यह आपके लिए लज्जा की बात नहीं? अपना पहिला कर्ज न चुकाकर, किस नैतिक नियम के अनुसार, आप मुझ से उत्तर के रूप में और कुछ चाहते हैं।

जिस तरह सरस्वती नदी की धारा कहीं दृश्य और कहीं अदृश्य है, ठीक उसी तरह का हाल आपकी मुखस्थ सरस्वती (वाणी) का भी है। आपकी बातों में स्पष्टता और अस्पष्टता दोनों का मिश्रण है। आपकी सुधा-सदृश बातें सुनकर मेरे श्रवण निःसन्देह कृतार्थ हो गये, तथापि आपका और आपके वंश का नाम सुनने के लिए वे अब उत्सुक हैं। उनकी यह उत्सुकता पूर्ववत् बनी हुई है। प्यासे की प्यास पानी ही से जा सकती है; घड़ों दूध अथवा सेरों शहद से नहीं। अतएव तब न सही अब, उनके इस औत्सुक्य को दूर करने की उदारता दिखाइए।

नल ने कहा—मैंने जो तुम्हारे उन दोनों प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया वह इसलिए कि मैंने वैसा करना व्यर्थ समझा। उससे लाभ की कुछ भी सम्भावना नहीं। अच्छा वक्ता वही है जो मत-

लभ की बात भी कहदे और अपने कथन को व्यर्थ बढ़ावे भी नहीं। मेरा नाम क्या है और मेरा जन्म किस वंश मे हुआ है—ये ऐसी बाते हैं जिनका सम्बन्ध प्रकृत विषय से कुछ भी नही हम दोनों इस समय एक दूसरे के सामने है। अतएव जिस काम के लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ उसका सम्पादन बिना मेरा नाम-धाम बतलाये भी, अच्छी तरह हो सकता है। इस विषय की बातचीत मे, पारस्परिक सम्बोधन के लिए, केवल 'मैं' और 'तुम' यही दो सर्वनाम काफी हैं। अच्छा, कल्पना करो कि मेरा जन्म किसी बुरे वंश मे हुआ है। इस दशा में उसका नामोल्लेख किस तरह उचित माना जा सकेगा? और यदि मेरा वंश उज्ज्वल है, तो भी उसका नाम लेना मुझे उचित नहीं। क्योंकि ऐसे वंश मे जन्म पाकर भी मेरा यहाँ दूत बनकर आना अपने वंश की बहुत बड़ी विडम्बना है। इसी से इन बातों के विषय मे उदासीनता दिखाकर मैंने देवताओं का सन्देश तुम से कह सुनाया। तुम्हे भी यही उचित है कि अवान्तर बातों पर व्यर्थ विवाद न करके मेरे द्वारा लाये गये सन्देश ही का उत्तर देने के लिए तुम अपनी वाणी को प्रवृत्त करो। अच्छा, जाने दो यदि तुम्हे इतना निर्बन्ध है तो दो शब्द कहकर मैं तुम्हारी इच्छा को पूर्ण ही क्यों न कर दूँ। लो सुन लो, मैं चन्द्रवंशी हूँ। अब तो तुम्हारा आग्रह सफल हो गया? नाम मैं अपना अपने ही मुँह से नहीं बतला सकता। भले आदमी अपना नाम अपने ही मुँह से नहीं लेते। क्या तुम नहीं जानती कि महात्माओं ने नियम ही ऐसा कर दिया है? लोकनिन्दा के डर से मैं इस नियम का उल्लङ्घन करने का साहस नहीं कर सकता।

इस पर दमयन्ती ने कहा—यह सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई कि आप सुधांशुवंश के आभरण हैं। तथापि आपकी कुछ विशेष बातों के सम्बन्ध मे मेरा संशय अभी

किसी-किसी विषय में तो आपने बड़ी बेढब वाग्मिता दिखाई और किसी-किसी में बिलकुल ही मौनभाव धारण कर लिया। आपकी यह नीति मेरी समझ में नहीं आई। जो कुछ मेरी समझ में अब तक आया है वह यह है कि आप वञ्चना करने में बड़े चतुर हैं। प्रतारण-विद्या आपकी खूब बढ़ी हुई है। अच्छी बात है। यदि आप अपना नाम बतला कर मेरे कानों को पीयूष-रस का पान न करावेंगे तो मैं भी आपके कथित सन्देश का उत्तर न दूँगा। पर-पुरुष के साथ बातें करने का अधिकार कुल-कामिनियों को कहाँ? यह भी तो महात्माओं ही का बनाया हुआ नियम है। आप इसे जानते हैं या नहीं?

नल ने अपनी प्रियतमा दमयन्ती के इस उत्तर का हृदय से अभिनन्दन किया। मन ही मन उसने दमयन्ती के इस भाषण-चातुर्य की प्रशंसा की। दमयन्ती की कोटि-कल्पना सुनकर वह निरुत्तर हो गया। उसने मुस्कराकर सिर्फ यह कहा कि शहद को भी मात करने वाले, ऐसे मीठे वचनों का प्रयोग तुम्हें सचमुच ही, पर-पुरुष के विषय में करना उचित नहीं। परन्तु दमयन्ती के लिए वह पर-पुरुष थोड़े ही था।

इसके अनन्तर नल ने बहुत गिड़गिड़ा कर इस तरह भाषण आरम्भ किया—

हाय! तुम मेरे इस इतने बड़े श्रम को विफल किये देती हो। चारों में से किसी एक दिक्पति को अपनी कृपा का पात्र नहीं बनाती। अमृत तुल्य रस के स्नान से पवित्र हुई अपनी ऐसी मधुरिमा-मय वाणी से तुम्हें देवताओं ही की उपासना करनी चाहिए। ऐसी रसवती वाणी से परिप्लुत उत्तर यदि तुम देवताओं के सन्देश का देतीं, तो मेरे मुँह से सुनाया जाने पर, वह देवताओं के सारे सन्ताप को एक क्षण में दूर कर देता। तुम्हारे उत्तर की अपेक्षा में मुझे यहाँ पर जितना ही अधिक विलम्ब हो

रहा है, रुष्ट हुआ रति-पति उतना ही अधिक देवताओं को अपने बाणों का निशाना बना रहा होगा। मेरा एक-एक क्षण यहाँ पर एक-एक कल्प के समान बीत रहा है। मुझे धिक्कार है! दूत का काम करना भी मुझे न आया। यह काम बड़ी ही जल्दी का था; परन्तु हाय! इसमें व्यर्थ विलम्ब हो रहा है।

इतना कह कर राजा नल के चुप हो जाने पर परम विदुषी दमयन्ती ने मन ही मन उन देवताओं की मूर्खता पर अफसोस किया जिन्होंने ऐसे सुन्दर पुरुष को स्त्री के पास दूत बनाकर भेजा। उसने अपने मन में कहा कि जलों [ड्डों] के अधिपति, प्रेतों के राजा [यम] मरुत्वान् [वात-प्रस्त], इन्द्र और ऊर्ध्वमुख अग्नि से और क्या उम्मेद की जा सकती है? जैसे वे स्वयं हैं वैसा ही दूत भी उनको मिला है। यह कह कर, और कुछ मुस-कराकर, नल को उत्तर देने के लिए वह प्रस्तुत हुई। वह बोली—

आपके साथ व्यर्थ परिहास करते बैठना मेरे लिए ढिठाई है। बार-बार निषेध-वाक्यों का प्रयोग करते जाना वाणी की विडम्बना है। और, आपकी बात का उत्तर न देना आपका अनादर करना है। इससे विवश होकर, देवताओं के सन्देश का उत्तर देना पड़ता है। सुनिए—

मैं मनुष्य-जन्म के कलङ्क से कलङ्कित हूँ। अतएव बड़ा ही आश्चर्य है जो देवताओं के मुँह से मेरे विषय में ऐसी बात निकली। हाँ मैं उनकी भक्त हूँ। इससे सम्भव है, दिगीश्वरों ने मुझ पर कृपा की हो। क्योंकि भक्त वात्सल्य के कारण स्वामी अपने सेवकों को भी कभी-कभी ऊँची से ऊँची कृपा का पात्र समझ लेते हैं। सुराङ्गनाओं के सम्पर्क से सुखी महेन्द्र की यह मनोवांछा कदापि उचित नहीं। सैकड़ों हंसनियों ने जिस सरोवर की शोभा को बढ़ाया है, वह यदि किसी अन्य तुच्छ जल-चारिणी चिड़िया की आकांक्षा करे तो उसकी ऐसी नीच

आकांक्षा उसकी विडम्बना का कारण हुए बिना नहीं रह सकती दिगीश्वर चाहे कुछ क्यों न कहें, उनकी बातें सुनने के लिये मैं बहरी बन रही हूँ। मत्त गजराज के विषय में कुरङ्ग-कन्या क्या कभी अपना मन-चलायमान कर सकती है? यदि करे तो उसका यह काम बहुत ही असङ्गत हो।

इतना कह कर दमयन्ती ने सिर नीचा कर लिया और चुप हो गई। उसका इशारा पाकर उसकी एक सहेली उसके पास गई। उनके कान में दमयन्ती ने कुछ कहा। तब सहेली ने नल को सम्मुखीन करके इस प्रकार उत्तर दिया—

लज्जा और सङ्कोच के कारण मेरी सखी दमयन्ती इस विषय में और कुछ नहीं कह सकती। मेरे हृदय के भीतर घुस कर जो कुछ उसने कहा है, उसे अब आप मेरे मुँह से सुन लीजिए।

इसने अपना चित्त, बहुत दिन हुए, निषध-नरेश को दे डाला है। यह उन्हीं की हो गई है। अतएव, जिस बात की इच्छा आप इससे रखते हैं, उसे कर दिखलाना तो दूर रहा, उसकी चिन्तना तक करते इसे डर लगता है। सती स्त्रियों की स्थिति बहुत ही नाजुक होती है। मृणाल-तन्तु की तरह, जरा-सा भी धक्का लगने से, वह टूट जाती है। वह यह कहती है कि स्वप्न में भी, मैंने नल को छोड़ कर और किसी के पाने की कभी इच्छा नहीं की। तुम्हारे ये चारों देवता तो सर्वज्ञ हैं। फिर ये अपनी समस्त-साक्षिणी बुद्धि से ही यह बात क्यों नहीं पूछ देखते? उन्हें सब कुछ ज्ञात है। फिर ऐसा असङ्गत प्रस्ताव क्यों? ये तो सदाचार-समुद्र के कर्णधार समझे जाते हैं। अतएव, मुझे पर-स्त्री जान कर भी किस तरह ये मेरे पाने की इच्छा करते हैं? इनके मन में तो इस प्रकार का विकार उत्पन्न न होना चाहिये। यह इन

केवल अनुग्रह है, जो मुझ मानुषी की भी प्राप्ति के ये इच्छुक हैं परन्तु यदि इन्हें मुझ पर अनुग्रह ही करना है, तो मुझे नल प्रदान रूपी भिक्षा देकर ही ये मुझ पर अनुग्रह प्रकट करें ईश्वर हैं, इनमें सब कुछ दे डालने की सामर्थ्य है। अतएव मुझे यह भिक्षा देना इनके लिये कोई बड़ी बात नहीं। सुन लीजिए मेरी सखी ने तो दृढ़तापूर्वक यह प्रतिज्ञा तक कर डाली है कि यदि नल ने मेरा पाणि-ग्रहण न किया तो मैं आग में जल कर मर जाऊँगी, या फाँसी लगा कर प्राण छोड़ दूँगी, या जल में डूब कर जान दे दूँगी। मैं जीती रहने की नहीं नल की अप्राप्ति में, मैं अपने शरीर को अपना शत्रु समझकर उसके सर्वनाश द्वारा उसके शत्रु-भाव की समाप्ति किये बिना न रहूँगी। इस प्रतिज्ञा को आप अच्छी तरह याद रखिए। आत्म-हत्या करना बुरा है, यह वह जानती है। परन्तु सती-धर्म की यदि रक्षा न हो सके तो आपत्ति काल में निषिद्ध आचरण करना भी अनुचित नहीं। राजमार्ग के कर्दम-मय हो जाने पर क्या समझदार आदमी अन्य मार्ग से नहीं आते-जाते? मैं स्त्री हूँ। दिक्पाल पुरुष हैं और वाग्मी भी हैं। इससे मैं उनकी बातों का अनुचित उत्तर देने में समर्थ नहीं। आप मुझ पर कृपा करें तो बात बन जाय। मैंने सूत्ररूप में जो कुछ आपसे निवेदन किया है उस पर एक भाष्य की रचना करके तब आप उसे देवताओं को सुनाइएगा। देखिए, काट-छाँट करके कहीं उसे और भी छोटा न कर दीजिएगा।

इस पर नल की विकलता की बातें सुनिए—

ये त्रिलोक वन्दनीय दिक्पाल तो तुम पर इतना प्रेम प्रकट कर रहे हैं, पर तुम उनसे विमुख हो रही हो। यह पहेली मेरी समझ में नहीं आती। मुझे तो तुम्हारी बातें बड़ी ही कौतुक-पूर्ण मालूम होती हैं। क्या यह भी सुना गया है कि निधि किसी निर्धन के घर में घुसने की चेष्टा करे और वह भीतर

किवाड़ बन्द करके उसे बाहर निकाल दे? तुम्हारा व्यवहार, इस समय ठीक इसी तरह का हो रहा है। यह जान कर कि तुम पर सुरेन्द्र का इतना अनुराग है, मैं तुम्हें परम सौभाग्यवती समझता हूँ और तुम्हारा हृदय से आदर करता हूँ। परन्तु तुम ऐसे सौभाग्यवर्द्धक व्यापार से पराङ्मुखी हो रही हो। चन्द्र-मुखी! यह तो बड़े ही आश्चर्य की बात है। मर्त्यजन्म पाई हुई मानवी स्त्री अमरत्व पाये हुए देवताओं को नहीं चाहती, यह बिलकुल ही नई बात है, जिसे मैं आज तुम्हारे मुख से सुन रहा हूँ। यह तुम्हारा दुराग्रह मात्र है। दुःख की बात है जो सब प्रकार तुम्हारा हित चाहने वाला तुम्हारा पिता भी तुम्हारे इस दुराग्रह-दोष को दूर नहीं कर देता। तुम तो स्वयं भी समझदार हो—विदुषी कहलाती हो। अतएव महेन्द्र को छोड़ कर नल-प्राप्ति की अभिलाषा रखने में तुम्हें क्या लज्जा भी नहीं आती? सारे सुरों के ईश्वर के मुकाबिले में क्यों तुम यःकश्चित् नरेश्वर को अधिक अच्छा समझ रही हो? उसका इतना आदर क्यों? इसे भावी की प्रबलता ही कहना चाहिए। देखो न; इतना चौड़ा मुख छोड़ कर श्वासोच्छ्वास ने सङ्कीर्ण-नासा की राह से आने-जाने का श्रम उठाया है! यह भावी की बात नहीं तो और क्या है? दूसरे जन्म में जिस सुरलोक की प्राप्ति के लिए बड़े-बड़े ऋषि-मुनि अपने शरीर को, तपस्यारूपी अग्नि में हुत कर देते हैं, वही सुरलोक स्वयं ही तुम्हें इसी जन्म में, अपने यहाँ ले जाने के लिये उतावला हो रहा है! परन्तु तुम उसकी एक नहीं सुनती। तुम्हारी मूढ़ता की सीमा नहीं।

उनके न मिलने पर मर जाने का जो तुमने प्रण किया है वह भी तुम्हारी मूर्खता ही का सूचक है। यदि तुम फाँसी लगा कर मर जाओगी तो प्राणोत्क्रमण के अनन्तर तुम्हें अवश्य ही कुछ समय तक अन्तरिक्ष में भ्रमण करना पड़ेगा और अन्तरिक्ष

में रहने वाले जीव-समुदाय का स्वामी, जानती हो, कौन है
वही इन्द्र उनका स्वामी है। वह तुम्हें वहाँ गया पाकर क्य
छोड़ने लगा। अतएव, इस दशा में तुम्हें अवश्य ही उसका होन
पड़ेगा यदि तुम आग में जल कर शरीर-त्याग करोगी तो अ
पर मानो तुम्हारी बड़ी ही दया होगी। चिरकाल से अनेकाने
प्रार्थनाएँ करने पर भी जो तुम इस समय इसके लिए दुर्लभ ह
रही हो वही तुम स्वयं ही उसे प्राप्त हो जाओगी। बिना नल
यदि तुम जल में डूब मरोगी तो फिर वरुण के सौभाग्य का कहन
ही क्या है। तुम्हारे बहिर्गत प्राणों को हृदय में धारण करके व
अवश्य ही कृतकृत्य हो जायगी। इन परिणामों के बचने के इरा
से सम्भव है तुम और किसी उपाय का अवलम्बन करो। परन्
वैसा करने से भी तुम्हारा परित्राण नहीं। क्योंकि मृत्यु के उप
रान्त तुम्हें निःसन्देह ही धर्मराज का अतिथि होना पड़ेगा।
अतएव तुम्हारे सदृश प्रियतम अतिथि को स्वयमेव अपने घर
आया पाकर वह अवश्य ही अपना परम सौभाग्य समझेगा।

तुम्हारी बातें सुन कर मुझे सन्देह हो रहा है कि इन्द्रादि
देवताओं के विषय में जो तुमने निषेध सूचक वाक्य कहे हैं वे
कहीं स्वीकार सूचक तो नहीं? अपनी वक्रोक्तियों से कहीं तुम
मेरे अभिलाषित अर्थ ही की पुष्टि तो नहीं कर रही? तुम्हारे

कब तक चक्कर खाया करूँ? अपने सङ्कोच-भाव को जरा कम
करके साफ़-साफ़ कह क्यों नहीं देती कि किस सर्वोत्तम को तुम
कृतार्थ करना चाहती हो। मेरी राय में तो सहस्र नेत्र सुरेन्द्र

को छोड़ कर और कोई तुम्हारे योग्य वर नहीं। सम्भव है, क्षत्रिय-गोत्र में जन्म लेने के कारण अग्निदेव पर अनुरक्त हो। इस दशा में उस ओजस्वी देवता की प्राप्ति के लिए तुम्हारा मनोरथवती होना भी सर्वथा उचित है। मैं जानता हूँ कि तुम बड़ी ही धर्मशीला हो। अतएव तुमने धर्मराज को अपने चित्त का अतिथि बनाया हो, तो उसका भी अनुमोदन करता हूँ। योग्य से योग्य का सङ्गम होना चाहिए। शिरीष-पुष्प के समान कोमल गात की होने के कारण यदि तुम सारे मृदुल पदार्थों के राजा वरुण को चाहती हो तो वही क्यों न तुम्हारा पाणिग्रहण करे। निशा ने तो इसी निमित्त शीतांशु को अपना पति बनाया है। सुरपुर परित्याग करके लक्ष्मी-पति भगवान जिस रमणीक समुद्र में दिन-रात विहार किया करते हैं, वहीं तुम भी वारीश्वर वरुण के साथ आनन्द से विहार कर सकती हो।

यद्यपि नल के इन वचनों में दमयन्ती के देव-सम्बन्धी अनुराग का मिथ्या आरोप था, अतएव वे सर्वथा विडम्बनीय थे, तथापि नल की उक्तियों को वह बड़े आदर की चीज समझती थी। इससे कान सहित अपने एक कपोल को हाथ पर रखे हुए दमयन्ती चुपचाप बैठी रही। खुले हुए कान से नल की उक्तियाँ मात्र उसने सुनीं। दूसरे कान को हाथ से ढक कर देव-सम्बन्धी अपने अनुराग की बातें उससे अनसुनी कर दीं।

बड़ी देर तक सिर नीचा किये हुए दमयन्ती सोचती रही। तदनन्तर लम्बी उसाँस लेकर वह इस प्रकार करुण वचन बोली—

तुमने मेरे और देवताओं के सम्बन्ध में जो बातें कहीं उन्होंने मेरे लिए तेज नोकवाली सुइयों का काम किया—मेरे पापी कानों को उन्होंने छेद सा डाला। अथवा यह कहना चाहिए कि उन्होंने मेरे प्राण ही निकाल लिये। कृतान्त के तो तुम दूत ही ठहरे। तुम से और क्या आशा की जा सकती है?

तुमने मेरे विषय में जो मिथ्या सम्भावनाएँ कीं, उनके श
मेरे कानों ने असह्य वेदना उत्पन्न कर रहे हैं। इस कारण
इस समय कुछ कहने में समर्थ नहीं।

इसके अनन्तर विदर्भनन्दिनी दमयन्ती की प्रेरणा से एक
सहेली नल के सम्मुख हुई। वह बोली—

मेरी सखी इस समय अपनी एक जिह्वा से लज्जारूपी दे
की आराधना कर रही है। अतएव उसे मौनव्रत धारण क
पड़ा है। उसकी दूसरी जिह्वा आप मुझे समझें और मुझ
मेरी सखी का उत्तर सुनें। जो कुछ मैं कहती हूँ उसे आप मे
सखी ही के मुख से निकले हुए वचन समझें।

कल ही स्वयंवर होने वाला है। उसमें निषाधनाथ नल
कण्ठ में वरमाला पहिनाने का मैंने निश्चय कर लिया है। आ
का दिन मेरे इस काम में विघ्न डाल रहा है। क्योंकि मेरे प्रा
कल के पहिले ही, निकल जाना चाहते हैं। उनके लिए एक दिन
का विलम्ब दुःसह हो रहा है। इसलिए आज आप यहीं ठहर
जाइए तो मुझ पर बड़ी दया हो। आपका दर्शन करके मैं इस
एक दिन को किसी तरह बिताने की चेष्टा करूँगी। कारण यह
है कि हंस ने अपने नखों से मेरे प्राणाधार का जो चित्र बनाया
था वह तुमसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। इसमें तुम्हारा भी
फायदा है। तुम्हारी आँखें तुम्हारे मुख की शोभा देखने में
असमर्थ हैं। ब्रह्मा ने उन्हें उस शोभा-विलोकन से वञ्चित रक्खा
है। अपना मुँह अपनी आँखों से नहीं देख पड़ता। यदि आप
ठहर जायेंगे तो कल अपनी मुख शोभा को नल के मुख मण्डल
पर देख कर आपकी भी आँखें अपना जन्म सफल कर लेंगी।
मैं हाथ जोड़ती हूँ दिगीश्वरों के लिए अब फिर याचना करके
मुझे आप तङ्ग न करें। फिर वैसे शब्द आपके मुँह से न
निकलें। देखिए, मेरी आँखें बेतरह अश्रु-पूर्ण हो आई हैं।

प्रियतमा दमयन्ती की ऐसी पीयूषपूर्ण वाणी सुन कर नल ने अपने आपको बहुत धिक्कारा। दमयन्ती ने तो उसे कृतान्त-दूत ही बनाया था। उसने अपने आपको महानिष्ठुर कृतान्त ही समझा। दमयन्ती की करुणोक्तियाँ सुनकर नल का हृदय यद्यपि विदीर्ण हो गया, तथापि उसने इतने पर भी अपने दूत-धर्म से च्युत होना उचित न समझा। भीतर ही भीतर ठण्डी साँस लेकर धीरे-धीरे उसने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

सुरेश्वर इन्द्र के घर ही में कल्पवृक्ष है। उस पर इन्द्र ही का सर्वतोभाव से अधिकार है। यदि उससे इन्द्र यह याञ्चा करे कि तुम मेरे लिए दमयन्ती को ला दो, तो किस तरह तुम इन्द्र की जीवितेश्वरी होने से बच सकोगी? कल्पपदाप से की गई याञ्चा कदापि व्यर्थ नहीं जाती। अग्नि यदि तुम्हारे पाने की कामना से सर्वकामिक यज्ञ करे और अपनी ही आहवनीय मूर्त्तियों में हविष्य करना आरम्भ करदे तो क्या होगा? इस तरह की वैदिक विधि मिथ्या नहीं हो सकती। तो उन्हें अग्नि की प्राणेश्वरी होना ही पड़ेगा। दक्षिण दिशा में धर्मराज ही का अखण्ड राज्य है, उसी के राज्य में अगस्त्यमुनि रहते हैं। यदि उनसे धर्मराज यह कहदे कि इस दफे मैं तुमसे धन-धान्यरूपी अपना षष्ठांश करना नहीं चाहता। उसके बदले तुम दमयन्ती को ला दो तो तुम्हारी क्या दशा होगी? वरुण के आश्रम में, यज्ञ के लिये सैकड़ों कामधेनु गायें बँधी रहती हैं। यदि वह उनमें से एक से भी तुमको पाने की याचना कर बैठे; तो तुम्हें उसके हस्त-गत होने में कितनी देर लग सकती है? क्षण भर के लिए मानलो कि यह कुछ न हो। न सही। अच्छा यदि नल के साथ तुम्हारा पाणि-ग्रहण संस्कार होने के पहले यमराज तुम्हारे या नल के किसी कुटुम्बी का प्राणापहरण करके घर में सूतक करदे तो! साक्षी-करण समय में अग्नि यदि प्रज्ज्वलित होने से इन्कार कर

दे तो !! कन्या-दान के समय वरुण यदि जल की धारा रोक दे तो !!! बिना इन्द्राणी के सान्निध्य के स्वयंवर निर्विघ्न नहीं समाप्त हो सकता। अतएव यदि पति की आज्ञा से शची तुम्हारे स्वयंवर में न आवे और उपस्थित राजों में विघ्न-रूप युद्ध छिड़ जाय तो !!! दमयन्ती ! सोच-समझ कर काम करो, हठ और दुराग्रह अच्छा नहीं। मूर्खता छोड़ो। मैंने जो कुछ कहा उसी में तुम्हारा परम हित है। विघ्न करने के लिए देवताओं के उतारू होने पर किस की सामर्थ्य है जो वह हथेली पर रक्खी हुई चीज पर भी अपना अधिकार जमा सके ?

नल की इन बातों को दमयन्ती ने अक्षर-अक्षर सच समझा। उसे विश्वास हो गया है कि अब नल की प्राप्ति असम्भव है। निराशा ने उसे अभिभूत कर दिया उसके नेत्र पर सावन भादों की जैसी घन-घटा छा गई। उसका सारा धैर्य जाता रहा। वह महाविकल और विह्वल हो उठी। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई वह बिलख-बिलख कर रोने लगी। उसे मति भ्रम-सा हो गया। कुछ होश में आने पर उसने विलाप आरम्भ किया—

दूसरों के अभिलषित फल के खा जाने का व्रत धारण करने वाले रे पापी दैव ! तू अब कृतार्थ हो। मेरे निष्फल प्राणों के पात के साथ ही तू भी पतित हो जा। स्त्री हत्या का पाप अब सिर पर ले। वियोग वह्नि से अत्यन्त तप्त हुए हृदय ! तू किस चीज का बना है ? इस्पात का तो तू है नहीं ? यदि होता तो इतना ताप सहने पर अवश्य ही गल जाता। वज्र भी तू नहीं; क्योंकि पञ्च शर के शरों से तू बेतरह छिदा हुआ है। और, वज्र में छेद हो नहीं सकते। अतएव, कहता क्यों नहीं, कि क्यों तू फट कर टुकड़े नहीं हो जाता ? हे जीवित ! शीघ्र ही तुम यहाँ से पलायन करो। मेरा हृदय ही तुम्हारा घर है और वहाँ आग लग गई है—वह जल रहा है। सुख की व्यर्थ आशा को तुम अब तक नहीं

छोड़ते ! धिक्कार है, तुम्हारी इस मूर्खता और तुम्हारे अपूर्व आलस्य को !!!

रे मन ! जिस प्रिय वस्तु को तू चाहता था, उसके मिलने की जब आशा न रही तब तू मौत माँगने लगा। पर वह भी तुझे नहीं मिलती। न वह वस्तु ही मिलती है, न मौत ही मिलती है। जो कुछ तू चाहता है वही तेरे लिए अप्राप्य हो जाता है। इससे तू वियोग ही क्यों नहीं माँगता ? तुझे यह इच्छा करनी चाहिए कि प्रियतम से मेरा वियोग हो जाय। परन्तु हाय ! अब वह भी सम्भव नहीं। इस समय एक-एक क्षण मेरे लिए एक-एक युग हो रहा है। कब तक मुझे ये यातनाएँ सहनी पड़ेंगी ? माँगने से मृत्यु भी नहीं मिलती। इधर मेरा अभिलषित कान्त मेरे हृदय को नहीं छोड़ता, उधर उसे मेरा मन नहीं छोड़ता। और, मन को भी मेरे प्राण नहीं छोड़ते। हाय-हाय ! कैसी दुःख परम्परा है।

हे देववर्ग, जिसके एक ही कण में मेरे उग्र से उग्र सन्ताप का संहार हो सकता है, वह तुम्हारा दया सागर किसने पी लिया ? क्या वह इस समय बिलकुल ही सूख गया है ? यदि तुम मन में जरा भी इच्छा करो तो अपने एक ही संकल्प-कण से तुम मुझसे भी उत्तम और कोई नारी-रत्न अपने लिए प्राप्त कर सकते हो। मैं सर्वथा तुम्हारी अनुकम्पनीय हूँ। अतएव मुझ पर तुम्हें इतना जुल्म न करना चाहिए। हे नैषध ! मैं जी-जान से तुम पर अनुरक्त हूँ। तुम्हारे कारण, इस समय, मुझ पर जो बीत रही है—जो यन्त्रणा मैं भोग रही हूँ—उसकी खबर किस तरह मैं तुम तक पहुँचाऊँ। ब्रह्मा ने उस पक्षी को भी, न मालूम कहाँ छिपा दिया। एक-एक सरोवर उसके लिए ढूँढ़ डाला गया। पर, कहीं पता न चला। यदि वह मिल जाता, तो मेरी इस दुर्गति का समाचार तो उन्हें ज्ञात हो जाता। मेरा मन एकमात्र तुम्हारे ही चरण-कमलों में लीन है। क्या इस बात को तुम नहीं [illegible]

जानते

हो तो तुम्हें मुझ पर दया क्यों नहीं आती ? दयावानों को इतनी निठुराई शोभा नहीं देती। अथवा इसमें तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं। दैव जो चाहे करे। वह ज्ञानियों को भी विचारान्ध कर देता है। खैर ! मेरी मृत्यु अब अनिवार्य है। मेरा प्राणान्त हो जाने पर कभी न कभी तो तुम्हारे मन में यह भनक अवश्य ही पड़ेगी कि दमयन्ती ने मेरे लिए प्राण दे दिये। अच्छा नाथ ! इस समय मुझ पर दया नहीं आई तो न सही। मेरा मृत्यु समाचार पाने पर ही तुम मुझ पर कुछ दया दिखाने का अनुग्रह करना। मैंने सुना है कि तुम बड़े दानी हो—तुम याचकों के कल्पद्रुम हो। इसमें मैं भी तुमसे एक छोटी-सी याचना करती हूँ। हे प्राणाधिक ! मेरा हृदय अब विदीर्ण होने ही पर है। उसके दो टुकड़े हो जाने पर, जिस रास्ते मेरे प्राण निकलेंगे उसी रास्ते, उन्हीं के साथ, कहीं तुम भी न निकल खड़े हो जाना !

पत्थर को भी पिघलाने वाला दमयन्ती का ऐसा विलाप सुन कर नल को आत्म-विस्मृति हो गई। उन्माद-ग्रस्त मनुष्य की जो दशा होती है वही दशा उसकी भी हो गई। इस दशा को प्राप्त होने पर वह अपने दूत-भाव को बिलकुल ही भूल गया। अज्ञानावस्था में वह इस तरह की प्रलाप-पूर्ण बातें कहने लगा—

प्रिये ! तू किसके लिए इतना विलाप कर रही है ? अपने मुख को अश्रु-धारा से क्यों वृथा धो रही है ? यह नल तो तेरे सामने ही, तुझे प्रणाम करता हुआ, खड़ा है। तिर्यक नेत्रों के विलास से क्या तूने उसे नहीं देखा ? लीला-कमल को हाथ में लेने के बदले अपने मुख में क्यों तूने उस पर रख छोड़ा है। मुख को लीला-कमल बनाने का कारण क्या ? तेरे नेत्रों से बहने वाले अमङ्गल अश्रुओं को, ला मैं अपने हाथ से पोंछ दूँ। ला, मैं अपने मस्तक से तेरे पद पङ्कजों की रेणुका का क्षालन करके उसके साथ ही अपने अपराधों का क्षालन करा लूँ। प्रिये !

यदि तू मेरा आदर-सत्कार करके मुझ पर अनुग्रह नहीं करना चाहती तो न कर। पर मैं तेरे सामने सर झुकाये खड़ा हूँ। इससे मेरा प्रणाम तो तुझे स्वीकार ही कर लेना चाहिए यह तो कोई बड़े परिश्रम का काम नहीं। याचकों के लिये तो तू कल्प-वृक्ष हो रही है; पर मेरी तरफ एक बार अच्छी तरह देखती भी नहीं। मुझे दृष्टिदान तक नहीं देतीं! मुझसे इतनी कंजूसी क्यों? आँखों से आँसुओं की झड़ी बन्द कर; मन्द मुसकान रूपी कौमुदी को फैलने दे; मुख-कमल को विकसित होने दे, नेत्र-खञ्जरीटों को यथेच्छ विहार करने दे। बोल-बोल। अपनी मधुमयी वाणी सुनाकर मेरे मुरझाये हृदय पुष्प को फिर प्रफुल्लित करदे। चन्द्रमा की निशा-नारी के समान तू ही नल की एक मात्र प्राणाधार है।

इतना कह चुकने पर नल का उन्माद अकस्मात् जाता रहा। उसे होश आगया। यह जानकर कि जो बातें मुझे न कहनी थीं वे भी मैंने कहा डालीं, उसे घोर परिताप हुआ। वह बोला—

हाय! मुझे क्या हो गया। क्यों मैंने इस तरह अपने को प्रकट कर दिया? इन्द्र मुझे अब क्या कहेगा? उसके सामने तो अब मैं मुँह दिखलाने लायक भी न रहा! अपना नाम अपने मुँह से बतला कर मैंने दिगीश्वरों का काम मिट्टी में मिला दिया। हनूमान आदि के उपार्जित यश से जो दूत पथ इतना प्रशस्त हो रहा था उसमें मैंने काँटे बखेर दिये। ईश्वर तू मेरा साक्षी है, जान-बूझकर मैंने ऐसा नहीं किया। हाय मेरी छाती लज्जा से फट क्यों नहीं जाती? यदि फट जाती तो देवताओं को मेरी हृदय-शुद्धि का ज्ञान तो हो जाता। खैर, देवता तो सर्वज्ञ हैं। सच क्या है सो वह जान लेंगे। पर सांसारिक जनों के

मुँह पर कौन हाथ रखता फिरेगा ? लोकनिन्दा से मेरी किसी तरह रक्षा नहीं।

बड़ी देर तक नल को इस तरह विलाप करते और सिर धुनते देख उस दिव्य हंस को उस पर दया आई। वह अचानक वहाँ आकर उपस्थित हो गया। उसने नल को समझा-बुझा कर शान्त कर दिया। उसने कहा—

बस, बहुत हो चुका। और अधिक दमयन्ती को पीड़ित न कीजिए। निर्दयता छोड़िए। इसका स्वीकार कीजिए। अधिक निराश करने से यह अवश्य ही अपनी जान दे देगी। अपने आपको जान बूझ कर प्रकाशित नहीं किया। इसमें आपका कोई अपराध नहीं। देवता आप पर कदापि अप्रसन्न न होंगे। वे आपके हृदय की शुद्धता को अच्छी तरह जानते हैं। यह कह कर वह हंस जब वहाँ से उड़ गया तब उन चारों दिक्पाल-देवताओं को प्रणाम करके नल दमयन्ती से इस प्रकार मधुर वाणी बोला—

देवताओं में अनुराग उत्पन्न करने की व्यर्थ चेष्टा करके मैंने तुम्हारी बहुत कदर्थना की। परन्तु इसमें मेरा कुछ दोष नहीं। मैं सर्वथा निरपराध हूँ। मैंने निष्कपट-भाव से देवताओं की दूतता की है। यही मेरा धर्म था। धर्म-पथ से डिगना मैं मृत्यु से भी भयङ्कर समझता हूँ। अब वे चाहे मुझ पर इस कार्य के उपलक्ष्य मे दया दिखावे, चाहे मुझे अपराधी समझ कर दण्ड दें। मुझे कुछ नहीं कहना। देवता तो तुम पर हृदय से अनुरक्त हैं पर तुम मुझको अपना दास बनाने का आग्रह कर रही हो। यह बड़े ही असमञ्जस की बात है। खैर, जो कुछ करना, बहुत कुछ समझ कर करना। ऐसा न हो कि तुम्हें पीछे से पश्चात्ताप करना पड़े। मेरी इस सलाह को तुम पक्षपात दूषित मत समझो। यह सलाह मैं देवताओं के डर से नहीं दे रहा और न इसलिए दे

रहा हूँ कि तुममें मेरा अनुराग ही कम है। नहीं, बात ऐसी नहीं। मैं पक्षपात-रहित होकर तुम्हारे हित की आकांक्षा से ही ऐसी सलाह देने का बाध्य हुआ हूँ। मैं अपनी दशा का तुमसे क्या वर्णन करूँ। तुम्हारे हित के लिए—तुमसे उऋण होने के लिए यदि मुझे अपने प्राण भी देने पड़ें तो भी मैं सुखपूर्वक उनका समर्पण करने को तैयार हूँ। तुमने मुझ पर जो कृपा की है उसके बदले में यदि मेरे प्राण भी तुम्हारे किसी काम आ सकें, तो उनके दान से भी मैं अपने को कृतार्थ ही समझूँगा।

नल की इस पीयूष-वर्षिणी वाणी को सुन कर दमयन्ती को परमानन्द हुआ। नल को पर-पुरुष समझ कर, उसके सामने बातें करने के कारण, उसके हृदय में जो घृणा और आत्म-निन्दाभाव उदित हुआ था, वह सब जाता रहा। परन्तु नल के सामने तद्विषय अपने अनुराग आदि को प्रकट करने के कारण उसे बेतरह सङ्कोच हुआ था, वह लज्जा से अभिभूत हो उठी। उसके मुँह से फिर एक भी शब्द न निकला। उसकी यह दशा देख कर उसकी सहेली अपना कान उसके मुँह के पास ले गई। परन्तु तब उसकी सहेली ने मुसकरा कर नल से कहा—सरकार, प्रियतमा पर लज्जा ने यहाँ तक अपना अधिकार जमा लिया है कि अब वह आपके सम्मुख अपने मुख से एक अक्षर तक भी निकालने में समर्थ नहीं। उसके मौन धारण का और कोई कारण नहीं, कारण केवल लज्जा है। अतएव आप उस पर अप्रसन्न न हूजिएगा। कहीं आप उस पर यह इलजाम लगाने की चेष्टा न कीजिएगा कि यह तो बोलती नहीं—इसने जो कुछ पहले कहा था सब बनावट थी। नहीं, ऐसा नहीं है। यह कह कर उसने दमयन्ती की नल-सम्बन्धिनी वे बातें कह सुनाईं, जो उसने नल प्राप्ति की कामना से समय-समय पर कही थीं।

उनसे उसने सिद्ध किया कि नल पर दमयन्ती का स्नेह कितन अगाढ़ है।

इस प्रकार भीमात्मजा दमयन्ती की सारी रहस्य-पूर्ण बा सुन कर, अपने सौभाग्य की प्रशंसा करते हुए, नल ने वहाँ र प्रस्थान किया। दमयन्ती के महल से चल कर नल शीघ्र ह पूर्वोक्त दिक्पालों के सामने उपस्थित हुआ और उनसे अप दूतत्व की सारी बातें यथातथ्य कह सुनाईं। सुन कर देवताओं के चेहरों का रङ्ग फीका पड़ गया।

प्रात:काल वे सब दमयन्ती के स्वयंवर में पहुँचे। अपने कौटिल्य का जाल बिछाने में उन्होंने यहाँ भी कसर न की। उन्होंने विषम विघ्न उपस्थित कर दिया। नल का रूप धारण करके वे वहाँ जा बैठे। परन्तु अपने सतीत्व के बल से उन विघ्न-बाधाओं को पार करके दमयन्ती ने, अन्त में नल के कण्ठ में वरण-माल्य पहना ही दिया। अपनी भक्ति से उसने उन देवताओं को यहाँ तक प्रसन्न कर लिया कि उन्हें नल को उसकी वकालत का मिहनताना भी, वर-प्रदान के रूप में देना पड़ा।

टिप्पणियां

पृष्ठ १३—समीक्षा=अच्छे प्रकार से आलोचना (सम + ईक्षा)। पराकाष्ठा=अन्तिम सीमा।

पृष्ठ १४—काव्यकक्षा=काव्य कोटि। वृत्त=छन्द।

पृष्ठ १६—गले में डाली......है=कमर के आभूषण को गले में पहिनने वाले की जिस प्रकार मूर्खता होती है, उसी प्रकार छन्द रूपी हार के अनुचित प्रयोग से कवि को। अपरिमेय= जिसकी नाप न की जा सके।

पृष्ठ १७—दोषोद्भावनाएँ=बुराइयों की कल्पना। अव-लोकन=विचार; पाठ।

पृष्ठ १८—रसायन=भिन्न-भिन्न धातुओं को फूँक कर बनाई हुई मूल्यवान और औषधि-विशेष।

पृष्ठ १६—अक्षर-मैत्री=परस्पर मेल खाने वाले अक्षरों का विचार। सार्वदेशिक=सारे देश से सम्बन्ध रखने वाला।

पृष्ठ २०—अर्थ-सौरस्य=अर्थ को मधुरता एवं रस-पूर्णता। तादात्म्य=तन्मय हो जाना; तल्लीनता।

पृष्ठ २१—आह्लादकारक=प्रसन्नता देने वाला। व्यञ्जक= सूचक। तन्वी.......है=सुकुमार तथा दुर्बल होते हुए विरह-व्यथा को सहन करना विशेषता का सूचक है।

पृष्ठ २२—व्यापार=कार्य। शब्द शास्त्र......भी=व्याकरण से शुद्ध होते हुए भी। अभिषेक=जिस प्रकार बिना तिलकोत्सव के कोई भी राजा नहीं कहला सकता उसी प्रकार बिना रस के

कोई काव्य काव्याधिराज नहीं बन सकता। काव्याधिराज काव्यों का राजा अर्थात् श्रेष्ठ कवि।

पृष्ठ २३—परकीया=पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष से प्रेम करने वाली नायिका। स्वकीया ऊढ़ा=विवाहित तथ पति में अनुरक्ता नायिका के 'आगतपतिका', 'प्रवत्स्यत्पतिका' आदि भेद करना। हाव=मनोविकारों के सूचक कटाक्ष आदि।

पृष्ठ २४—हेला भाव=अभिलाषा, कटाक्ष आदि का अत्यन्त स्पष्ट रूप।

पृष्ठ २५—अवहेलना=उपेक्षा, तिरस्कार।

पृष्ठ २६—सुवर्ण=सुवर्ण, शब्द।

पृष्ठ २७—धर्मसंस्थापनार्थाय=धर्म को स्थिर बनाने के लिए गीता में कृष्णजी ने यह कहा है कि मैं धर्म की स्थापना के लिए अवतार लेता हूँ। (वहीं का यह पद है)।

पृष्ठ २६—संक्रान्ति=एक स्थान से दूसरे पर जाना।

पृष्ठ ३०—परोक्ष रूप से=उपदेश खुला होने से काव्य का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है।

पृष्ठ ३२—सापेक्ष = (यहाँ आवश्यक)। कविताकुबेर= (व्यंग्योक्ति) कुबेर देवताओं का कोषाध्यक्ष है। अत: वह सब से अधिक धनी माना जाता है, कविताकुबेर से भाव (व्यंग्य से) तुक्कड़ कवि से है।

पृष्ठ ३३—हस्तामलकवत्=हथेली पर स्थित आमले के समान अर्थात् प्रत्यक्ष एवं पूर्ण रूप से ज्ञान। कुट्टिनी=व्यभिचारिणी स्त्री।

पृष्ठ ३४—दिव्य=दैवी। पौरुषेय=मनुष्य सम्बन्धी। क्रिया मातृका मन्त्र=सरस्वती देवी को प्रसन्न करने वाला मन्त्र।

कृच्छ्रसाध्य=कठिनाई से ठीक होने वाला।

पृष्ठ ३५—अभिनन्दन=प्रशंसा। उग्र-सन्धि=बहस, खण्डन-मण्डन आदि।

पृष्ठ ३६—प्राप्तकवित्वशक्ति=जिसे कविता करने की शक्ति प्राप्त हो गई हो।

पृष्ठ ३७—याञ्चा=कुछ माँगने की प्रार्थना।

पृष्ठ ३६—महायात्रा=मृत्यु। पञ्चक=धनिष्ठा आदि पाँच नक्षत्र जिनमें कोई नया काम करना वर्जित है।

पृष्ठ ४१—कण्ठाभरण=क्षेमेन्द्रकृत 'कविकण्ठाभरण' नामक पुस्तक; गले का आभूषण।

पृष्ठ ४३—दीवान=गजलों का संग्रह। इस्तेदाद=योग्यता।

पृष्ठ ४७—अभावोक्तियाँ=असम्भव तथा बेसिर-पैर की बातें।

पृष्ठ ५०—अपरिहार्य=आवश्यक। काफिया=अन्त्यानुप्रास तुक। वज़न=छन्द की गति।

पृष्ठ ५३—आलङ्कारिक=अलङ्कार शास्त्र के ज्ञाता।

पृष्ठ ५४—व्युत्पत्ति=शास्त्रीय योग्यता। मुशाहिदा=प्रत्यक्ष देखना।

पृष्ठ ५५—उपोद्घात=भूमिका।

पृष्ठ ५७—ध्वनि=व्यंग्यार्थ।

पृष्ठ ५८—एक मात्र.........है—जिन कवियों में केवल शब्दाडम्बर का ही गुण है।

पृष्ठ ६०—अनुधावन=अनुकरण।

पृष्ठ ६२—अन्तःकरण की वृत्तियाँ=हृदय के भाव। शब्दात्मक मनोभाव=शब्दों में प्रकट हृदय के भाव।

पृष्ठ ६३—समञ्जस=समझदार।

पृष्ठ ६४—तरणि=सूर्य। ताते=गरम। साथरी=बिछावन। तुराई=तोशक।

पृष्ठ ५३—राखिय अवध .... प्रान—यदि आप मुझे अवधि तक (१४ वर्ष) अयोध्या में छोड़ जायँगे तो मेरी मृत्यु ही समझिये। पाठान्तर—'राखिय अवध जो अवधि लगि रहत जानिये प्रान'=यदि आप मेरे प्राणों को अवधि तक रह सकने योग्य समझते हों तो मुझे यहाँ छोड़ जाइए। सम महि=इकसार जगह। पनौटिहि=खड़ाऊँ। तुमहिं उचित ... भोगू-(काकूक्ति) अर्थात् आपके लिए तप करना और मेरे लिये ऐश्वर्य भोगना कहाँ तक उचित है।

पृष्ठ ५६—उद्दीप्त=तीव्र। उपरति=वैराग्य; संसार से विरक्ति।

पृष्ठ ६७—पर्यवसान=अन्त (लक्ष्य)। उसका अच्छी ... . चाहिए=तात्पर्य यह है कि तर्क को छोड़ने से ही कविता का स्वाद मिलता है।

पृष्ठ ६८—रसाल=सरस तथा मधुर। सत्कृत्य....... .... करना=अच्छे कामों में समय का उपयोग करना। यह स्वाभाविक.... . है=आनन्द तथा उपयोग के लिये कविता करना मनुष्य का स्वभाव है।

पृष्ठ ६६—राजाश्रय=राजाओं का सहारा। अज्ञात यौवना =वह नायिका जिसको अपने युवतीपन का ज्ञान नहीं। विट= धूर्त, वेश्या प्रेमी। चेटक=दूत एवं सेवक।

पृष्ठ ७०—नवोढ़ा=नव विवाहिता नायिका। पुरुषायित-प्रबन्ध=पुरुष रूप होकर रति करना। (विपरीत रति)। भेद रुचि=नायिका भेद वर्णन करने की रुचि।

पृष्ठ ७१—खण्डिता=वह नायिका जिसका पति अन्य स्त्री के पास रहकर लौटे। सुरतान्त=रति के उपरान्त। ज्ञात यौवना= वह नायिका जिसे अपने युवती होने का ज्ञान हो गया हो। विपरीत रति=स्त्री का पुरुषवत् रति क्रीड़ा प्रवृत्त होना। उद्वेग-

जनक=ग्लानि उत्पन्न करने वाला। प्राचुर्य=अधिकता। अव-लम्बन=मूल आधार।

पृष्ठ ७२—सामान्या नायका=गणिका।

पृष्ठ ७३—चकार......निकाला=कुछ भी विरोध न किया; चूँ भी न की। कूजित के मिष=मीठे वचनों के बहाने से।

पृष्ठ ७४—वासकसज्जा=वस्त्रादि से विभूषित होकर पति की प्रतीक्षा करने वाली नायिका। विप्रलब्धा=संकेत करके भी प्रिय जिसके पास न आवे। कलहान्तरिता=पति से लड़कर पछताने वाली नायिका। दक्षिण=वह नायक जो सब को सन्तुष्ट रखता हुआ एक साथ कई स्त्रियों से प्रेम करता है। अनुकूल=एक ही नायिका में अनुरक्त नायक। धृष्ट=वह नायक जो झिड़कियाँ खाकर भी लज्जित नहीं होता। शठ=वह नायक जो दिखावटी प्रेम से स्त्रियों को धोखा देता है। आह्वान=पुकारना। नववयस्क मुग्धमति युवाजन=नवयुवक जो स्वभाव से ही सांसारिक ज्ञान से अनभिज्ञ होते हैं। चेष्टा वैलक्षण्य=हाव-भावों के भेद और उनकी विशेषता।

पृष्ठ ७६—सम्मोहन शर=मोहित करने के लिए प्रयुक्त बाण अलक्षित वाणी=जिसका कहने वाला दिखाई नहीं देता। आकर्णकृष्ट=कानों तक खींचा हुआ।

पृष्ठ ७७—आविर्भाव=उत्पत्ति। भावनाएँ=कल्पनाएँ।

पृष्ठ ७८—किन्नरी=एक देवयोनि विशेष की स्त्री। अनन्य-साधारण=अनुपम।

पृष्ठ ७९—स्तम्भित = आश्चर्यचकित। कामेश्वर शास्त्री=कामदेव। अथवा काम शास्त्र में प्रवीण कल्पित शास्त्री का नाम।

पृष्ठ ८०—तिलोत्तमा, सुलोचना आदि अप्सरायें हैं। विभ्रम=विलास; हाव-भाव। निष्प्रभ=शोभाहीन। प्राङ्गण=आँगन। क्रीड़ाहंस=मन बहलाव के लिए पला हुआ हंस।

पृष्ठ ८१—नवनीलता=नेवाड़ी। हरिणशावक=हिरन का छोटा बच्चा। अतर्कित पियराई=वह पीलापन जिसके लिए कोई कारण नहीं प्रतीत होता।

पृष्ठ ८२—चित्र फलक=तसवीर खींचने का पट या तख्ता। त्रिलोकीतिलक=तीनों लोकों मे श्रेष्ठ। उशीर=खस। पर ऐसा ... है=परन्तु मुँह नीचा करने से हृदयस्थित आभूषणों मे चन्द्रमा की परछाहीं दीख पड़ती है। कङ्कणों के ... सकेंगे=हाथ के आभूषण गिर तो दमयन्ती की क्षीणता के कारण रहे हैं, परन्तु कवि की उत्प्रेक्षा है कि मानो वे दमयन्ती को अपना भार सहने योग्य न समझ कर स्वयं ही चले जा रहे हैं।

पृष्ठ ८३—चन्दनचर्चित मणिमण्डित=चन्दन तथा मणि आदि शीतल पदार्थों से युक्त। मरीचि=किरण। उपचार=इलाज। मार्तण्ड=सूर्य। जब यदि ...... बात है=जब देवता तक तेरा ध्यान करते हैं तो फिर एक मनुष्य का, जिसको तू स्वयं चाहे, तुझे न प्राप्त होना आश्चर्य ही का विषय है। कालिदास ने भी ऐसा ही कहा है—

"कमला मिलै कि ना मिलै ताहि चहत जो कोइ।
पै जाको कमला चहै सो दुर्लभ क्यों होइ॥"
(शकुन्तला)

पृष्ठ ८४—चन्द्रमौलि=शिवजी (चन्द्रमा जिनके मस्तक में है) रागान्ध=प्रेम में अन्धा। गतागत=आना-जाना; घूमना। स्पर्द्धा=ईर्ष्या। विलासिनी=स्त्री। पाणिपीड़न=विवाह। वैमानिक=विमान उड़ाने वाला। मधु=वसन्त। माधवी=वासन्ती नाम की लता।

पृष्ठ ८५—कम्बुकण्ठ=शङ्ख के समान सुडौल गरदन। हृदय-वृत्ति=हृदय का भाव (यहाँ प्रेम)। मुक्तालता=हार। कण्टकित=पुलकित। पञ्चशायक=कामदेव। उन्मज्जित=बाहर

निकला; ऊठ निर्व्याज=स्वार्थ और छल से रहित। चिन्तामणि=वह स्वर्गीयमणि जो विचारे हुए पदार्थ को दे देती है। सायन्तनी=सन्ध्या के समय की।

पृष्ठ ८६—नीर-क्षीर-विवेक=दूध और पानी को अलग-अलग करने का ज्ञान।

पृष्ठ ८७—प्रवाद=अफवाह। जागरूक=जगी हुई, तीव्र।

पृष्ठ ६१—विस=कमलनाल। जलरुह्=जल में उत्पन्न होने वाले कमलादि।

पृष्ठ ६३—उछृङ्खल=निरंकुश, मनमानी करने वाले। क्रौंच=हंस के समान एक पक्षी विशेष। मा निषाद=आदि कवि वाल्मीकि के मुख से करुणावश निकला हुआ सर्वप्रथम श्लोक जिसका भाव है कि हे निषाद (भील) कामान्मत्त इस क्रौंच के जोड़े में से एक को तूने क्यों मारा; ऐसा करने से तेरी प्रतिष्ठा हमेशा को चली जायगी। सरस्वती=वाणी। विधुरा=दुखी वियोगिनी। अल्पादल्पतरा समवेदना=थोड़ी-सी भी सहानुभूति।

पृष्ठ ६४—गेय तथा आलेख्य=गाने और लिखे जाने योग्य। पक्षपात-कार्पण्य=सहानुभूति की कमी। श्रुतिसुखद=सुनने में मधुर। शीतातप=ठंड और धूप। भवतु-नाम=अस्तु, जो कुछ हो। हा हत विधि..........सि=हाय दुर्भागिनी उर्मिला अत्यन्त दयालु वाल्मीकि ने भी तुझे भुला दिया। दुःखाश्रु मोचन=दुःख से आँसू बहाना। राजान्तःपुर=रनिवासी। नन्दन वन=इन्द्र का उद्यान; यहाँ हरे भरे से तात्पर्य है।

पृष्ठ ६५—छिन्नमूल=जड़ से कटी हुई। वचने दरिद्रता=वर्णन करने योग्य शब्दों की कमी। दुःखोदधि=दुख का समुद्र। आत्मोत्सर्ग=त्याग। विवाहोत्तर=विवाह के बाद। नवोढत्व=नव विवाह। अन्तर्दर्शी=हृदय की बातों का ज्ञाता।

पृष्ठ ९६—आराध्य युग्म=पूज्य दम्पति, सीता एवं राम। नाना पुराण०=तुलसीदासजी ने लिखा है कि मैं अपनी कथा भिन्न-भिन्न स्थानों से ले रहा हूँ, पर उर्मिला के विषय में वे भी बाल्मीकि के समान ही मौन है।

पृष्ठ ९७—साकेत=अयोध्या। उर्मिला का ... ... है= "उत्तर रामचरित" में जिस प्रकार लक्ष्मण ने उर्मिला का चित्र हाथ से ढक लिया, उसी प्रकार उसका चरित्र कवियों ने ढक रक्खा अर्थात् उसका वर्णन नहीं किया।

पृष्ठ ९८—भर्त्सना=भिड़कना।

पृष्ठ ९९—आवास=निवास स्थान।

पृष्ठ १००—भुवनातिव्यापिनी=चौदह भुवनों में श्रेष्ठ। चाटुकारिता=खुशामद।

पृष्ठ १०१—उपायन—भेंट। तिरस्कारिणी विद्या=अदृश्य होने की विद्या। अनावृत्त=खुले हुए। स्थिति स्थान=जिस जगह वह खड़ा था। चरित्रदार्ढ्य=चरित्र की दृढ़ता।

पृष्ठ १०२—अनिर्वचनीय=जिसका कथन न हो सके। मन्मथ=कामदेव। अप्रतिभ=मुग्ध। अभ्युत्थान=आदर प्रदर्शित करने के लिए खड़ा होना। धारासार=जल वर्षण। कुण्ठित कण्ठ=अवाक्। प्रेमपूर्ण ......चाहिए=यदि मधुपर्क न बन पड़े तो मीठे वचनों से ही स्वागत करना धर्म है। मधुपर्क=शीतल तथा सुगन्धित पदार्थों से बना हुआ एक प्रकार का शरबत।

पृष्ठ १०३—आनन्दाश्रु ... ...चाहिए=जल के अभाव में प्रसन्नता सूचक आँसुओं से ही अर्घ्य देना चाहिए अर्थात् हर्ष प्रकट करना चाहिए। आप उसे ... ...करें=आसन पर विराजें। शिरीष कलिका=सिरस के फूल बहुत कोमल होते हैं। सन्न बीत ...... डाली=आप किस देश को शोभा-हीन कर के छोड़ आये हैं, अर्थात् आपका आगमन कहाँ से हुआ है। समुद्र

के साथ............है=चन्द्र सदृश आपको जन्म देकर आपका वंश भी समुद्र के समान ही धन्य है। (चन्द्रमा समुद्र से उत्पन्न है)। महासागर............हूँ=अर्थात् महल में प्रवेश होना कठिन है।

पृष्ठ १०४—मूर्तिहीन=शिवजी द्वारा भस्म होने के बाद से काम शरीर रहित हो गया और तब ही से उसका नाम अनंग पड़ा। अश्विनीकुमार=सूर्य के पुत्र जो देवताओं के वैद्य हैं। अद्वितीय=अकेले। ओष्ठ बन्धूक=बन्धूक (दुपहरिया) पुष्प के समान लाल ओष्ठ। दमयन्ती के......गई=दमयन्ती के अरुण ओष्ठों से निकले हुए वाक्यों ने कानों में प्रविष्ट होकर कामदेव के बाणों के समान हृदय पर प्रभाव डाला। शरीरान्तरवर्तिनी मज्जापर्यन्त=शरीर में अत्यन्त गहरे स्थान तक।

पृष्ठ १०५—कलुषित=मलीन।

पृष्ठ १०६—बिम्ब=घेरा, मंडल। केवल......होगी=जब शिवजी ही ने, जो केवल तीन नेत्रों वाले हैं कामदेव की वह दुर्दशा कर डाली तो अब एक हजार नेत्रों वाले इन्द्र के क्रुद्ध होने पर उसकी न जाने क्या दशा होगी। वचन कृत अपराध=बोलने से कष्ट देना (कोकिला की वाणी विरही को सह्य नहीं होती)। दारिद्रहीन=पत्र रूपी धन के अभाव से दुखी। रतिपति.........ने=कामदेव के वेग के कारण। धैर्यविधायक=शान्ति देने वाली।

पृष्ठ १०७—अष्टमूर्ति.........है=शंकर की अष्ट मूर्तियों में अग्नि भी एक है। अष्ट मूर्तियाँ=जल, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी, वायु और यजमान। याजक=यज्ञ करने वाले। कुसुमायुध=कामदेव। सूर्य...........है=सूर्य जिसका पिता है ऐसा यमराज। दक्षिण.........है=यम का वास उसी दिशा में है।

कामाग्निदग्ध ... ... है=कामदेव के ताप से उसका धैर्य नष्ट हो गया है। मलय=मलयाचल जो दक्षिण दिशा में स्थित है।

पृष्ठ १०८—युगानुयुग=युगयुगान्तर से; प्राचीनतम काल से। स्मराग्नि=कामाग्नि। संशयापन्न=सन्देह में पड़े हुए। चरण कमलों ... करो=इनको वरण करके इनके यहाँ पधारो। भैमी=भीमराज की पुत्री दमयन्ती।

पृष्ठ १०६—पहिले अपना ... कर=मेरा प्रश्न पहिला है और आप उसका उत्तर देने को बाध्य हैं, उस ऋण को बिना चुकाए अर्थात् मेरे प्रश्नों का उत्तर न देकर।

पृष्ठ ११०—प्रकृत विषय=उपस्थित प्रसंग। अवान्तर बातें=गौण बातें। विडम्बना=निरादर। निर्बन्ध=हठ।

पृष्ठ १११—सुधांशु=चन्द्रमा। वाग्मिता=बोलने की शक्ति। प्रतारण विद्या=छलने का गुण। दिक्पाल=दिशाओं के स्वामी।

पृष्ठ ११२—परिप्लुत=पूर्ण। कल्प=चार सौ युग। ऊर्ध्व-मुख=अग्नि की गति ऊपर की ही ओर होती है, घमण्डी। बार बार ... है=बराबर 'नहीं' 'नहीं' करते रहना वाक्शक्ति का निरादर करना है।

पृष्ठ ११३—दिगीश्वर=दिशाओं के स्वामी इन्द्र वरुणादिक। कुरङ्ग-कन्या=हरिणी। मत्तगजराज ... है=हरिणी का मस्त हाथी पर अनुरक्त होना उपहासास्पद है। असंगत=अयोग्य। समस्त साक्षिणी=सब बातों को प्रत्यक्ष देखने वाली।

पृष्ठ ११४—सदाचार समुद्र के कर्णधार=जिस प्रकार समुद्र पर माँझी मार्ग दिखलाता है उसी प्रकार अच्छे आचार विचार का मार्ग बतलाने वाले देवगण हैं। ईश्वर=सामर्थ्यवान्। राजमार्ग=मुख्य रास्ता। कर्दममय=कीचड़ से भरा हुआ। मैंने ... ...सुनाइएगा=जो बातें मैंने संक्षेप में कही हैं उनको

पृष्ठ ११५—निधि=लक्ष्मी। पराङ्मुखी=विमुख। मर्त्य-जन्म=मनुष्ययोनि जिनका स्वभाव ही मरना है। दुराग्रह=बुरी हठ। यःकश्चित्=कोई भी; साधारण।

पृष्ठ ११६—प्राणोत्क्रमण=मृत्यु। अन्तरिक्ष=आकाश बहिर्गत=बाहर निकले हुए। परित्राण=रक्षा। वक्रोक्ति=कहा तो कुछ जाये पर सुनने वाला उसका दूसरा ही अर्थ निकाले। अपनी""रही=अपने निषेध से तुम कहीं प्रकारान्तर से मेरी बात स्वीकार ही तो नहीं करतीं। विदग्ध=विद्वान्। चतुरा""आकर है=विदुषी स्त्रियों के मुख से व्यंग्य वचनों का निकलना स्वाभाविक ही है।

पृष्ठ ११७—सरस्वती-रस=वाणी की मधुरता। ओजस्वी=तेजवान्। शीतांशु=चन्द्रमा। देव-सम्बन्धी""""था=देवताओं पर दमयन्ती के प्रेम होने की झूठी बात का समावेश था।

पृष्ठ ११८—कृतान्त के दूत=यम का सन्देश लेकर आये हुए यमदूत के समान कठोर। सम्भावना=अनुमान। लज्जा रूपी""""है=लज्जा के कारण बोल नहीं सकती।

पृष्ठ ११९—सार्वकामिक यज्ञ=वह यज्ञ जिससे सब इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। आहवनीयादि मूर्त्ति=अग्नि के भिन्न भिन्न स्वरूप जिनका नाम लेकर आहुति दी जाती है। हविष्य=हवन के पदार्थ। यदि अपनी""""होमा=यदि अग्नि सार्वकामिक यज्ञ करे और अपने आहवनीयादि स्वरूपों में प्रत्यक्ष हविष्य दान करे तब तो तुम्हें उसके वश में होना ही पड़ेगा। षष्ठांश=आय का ⅙ जो राजा कर रूपमें प्रजा से लेता है।

पृष्ठ १२०—साक्षीकरण समय=विवाह में वर वधू अग्नि के सामने आजन्म विवाह-सूत्र में बँधे रहने की प्रतिज्ञा करते हैं। ""सकता=स्वयंवर की अधिष्ठातृ देवी

शची (इन्द्राणी) है, अतः उसके रुष्ट हो जाने पर स्वयंवर हो ही कैसे सकता है।

पृष्ठ १२१—जीवित=प्राण। नैषध=देश के राजा।

पृष्ठ १२२—उस पक्षी से हंस की ओर संकेत है। कल्पद्रुम=कल्पवृक्ष। उन्मादग्रस्त=पागल। तिर्यक्=तिरछे। लीला कमल=क्रीड़ा के लिए स्त्रियाँ हाथ में कमल रखती थीं। संस्कृत के सभी कवियों ने इसका वर्णन किया है। लीला कमल को ......छोड़ा है=लीला कमल तो हाथ में रहता है। तुम उस पर मुँह रखे हुए क्यों बैठी हो। अर्थात् उदासी से मुँह क्यों लटका लिया है। क्षालन=धो डालना। कौमुदी=चाँदनी। नेत्र खञ्जरीट=नेत्र रूपी खञ्जन पक्षी। प्रशस्त=प्रशंसा करने योग्य; सुन्दर।

पृष्ठ १२४—कदर्थना=बुराई, अपराध।

पृष्ठ १२५—आत्मनिन्दा=अपने को बुरा भला कहना।

पृष्ठ १२५—कौटिल्य=चालाकी, धूर्तता।

आलोचना सम्बन्धी साहित्य

सुमित्रानन्दन पन्त—ले० डा० नगेन्द्र । इस पुस्तक में छायावाद के स्वरूप के साथ उसके टेकनीक विवेचन और पन्तजी की नवीनतम कृतियों की आलोचना है । मूल्य ३)

साकेत एक अध्ययन—ले० डॉ० नगेन्द्र । इसमें साकेत के भाव-पक्ष, कलापक्ष और सांस्कृतिक पक्ष के सम्बन्ध में आलोचना है । मू० ३॥)

हिन्दी गीति काव्य—ले० प्रो० ओमप्रकाश अग्रवाल एम० ए० । यह पुस्तक विशेषकर हिन्दी गीति-काव्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के लिए लिखी गई है । इसमें हिन्दी गीति-काव्य तथा कवियों का परिचय निष्पक्ष रूप से दिया गया है । विषय प्रवेश में गीति-काव्य की विशेषताएँ तथा सङ्गीत, विकास और तुलनात्मक सारांश रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक २३ प्रमुख गीति-काव्य के कवियों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है । हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में यह गीति-काव्य अमूल्य निधि है । मूल्य ३)

साहित्य की झाँकी—लेखक डॉ० सत्येन्द्र । इसमें कृष्ण-काव्य, कहानी साहित्य और समालोचना शास्त्र पर उपयोगी लेख हैं । मूल्य १॥)

ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन—ले० डॉ० सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी० । प्रस्तुत पुस्तक लेखक का पी-एच० डी० के लिए लिखा गया प्रबन्ध रूप में एक अद्वितीय ग्रन्थ है । इसमें ब्रजलोक-वार्ता का वैज्ञानिक किन्तु रोचक अध्ययन उपस्थित किया गया है । दूसरा संस्करण अभी छपा है । मूल्य ८)

प्रसादजी की ध्रुवस्वामिनी—लेखक श्री कृष्णकुमार सिन्हा । प्रसादजी के अन्तिम नाटक ध्रुवस्वामिनी का इसमें सुबोध शैली में मूल्याङ्कन और अध्ययन है । मूल्य १)

परीक्षार्थी प्रबोध—(चार भागों में)—हिन्दी साहित्य के परीक्षार्थियों की सामयिक सहायता के लिए तैयार की गयी है । प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, विदुषी, सरस्वती, रत्न, भूषण, प्रभाकर, प्रवेशिका, भूषण, साहित्यालङ्कार, इन्टर, बी० ए० तथा ...

छात्रों के लिए चुने हुए उपयोगी विषयों पर उनमें अधिकारी वि
द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री दी गयी है। प्रत्येक भाग का मूल्य ३)

प्रेमचन्द : कहानी कला—लेखक डॉ० सत्येन्द्र। इस ग्रन्थ
विद्वान् लेखक ने समस्त कहानी साहित्य का मन्थन करके उसका व
करण किया है। प्रत्येक वर्ग की विशेषताओं के साथ फिर उनकी कह
कला का वैज्ञानिक विवेचन किया है। मूल्य ३)

प्रसादजी की कला—सम्पादक—गुलाबराय एम. ए.। इस पुस
में प्रसादजी की बहुमुखी प्रतिभा के विभिन्न पक्षों पर विविध विद्वानों द्वा
आलोचनात्मक प्रकाश डाला गया है। कवि प्रसाद के अध्ययन के लि
विद्यार्थियों को यह पुस्तक बहुत लाभप्रद होगी। मूल्य ४)

गुप्तजी की कला—लेखक-डा० सत्येन्द्र। गुप्तजी पर प्रथम आलो
चनात्मक पुस्तक। मूल्य २)

कला कल्पना और साहित्य—डॉ० सत्येन्द्र के साहित्यिक निबन्ध
उच्च कक्षा के विद्यार्थियों के लिए। मूल्य ४॥)

भाषा-भूषण—महाराजा जसवन्तसिंह कृत, सटीक। मूल्य १)

हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि—लेखक-प्रो० विश्वम्भर-
नाथ उपाध्याय एम० ए० (हिन्दी संस्कृत)। इस पुस्तक में हिन्दी-काव्य
में प्रतिबिम्बित सभी दार्शनिक धारणाओं का गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत
किया गया है। दार्शनिक सिद्धान्तों का उद्गम, विकास तथा समाज से
उनका सम्बन्ध भी प्रदर्शित किया गया है। मूल्य ६॥)

पन्तजी का नूतन काव्य और दर्शन—लेखक-प्रो० विश्वम्भर
नाथ उपाध्याय एम० ए०। प्रस्तुत पुस्तक में पन्तजी के नूतन काव्य की
बड़ी विशद और महत्त्वपूर्ण समालोचना है। अरविन्द दर्शन और मार्क्स
वाद की तुलना करके पन्त दर्शन की कड़ी परीक्षा की गई है। हिन्दी में
इस ढङ्ग की यह अपूर्व पुस्तक है। मूल्य १२)

सभी प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।